हिंदी भूषण परीक्षा की सहायक पुस्तकें

वीर-कविता की कुंजी

(ले०—श्री शंभुदयाल सक्सेना, साहित्यरत्न)

इसमें वीर कविता के सब पद्यों के अर्थ बड़ी सरल भाषा में दिए गए हैं। कठिन शब्दों के अर्थ और प्रसंगवश आने वाली सब कहानियाँ भी दी गई हैं। इस कुंजी की सहायता से विद्यार्थी स्वयं इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। श्री शंभुदयाल सक्सेना और हिन्दी भवन का नाम इसकी शुद्धता और सर्वोत्तमता का सबसे बड़ा प्रमाण है। मू० ॥)

हिन्दी-काव्य-विवेचना की प्रश्नोत्तरी

[सं०—हरिश्चन्द्र शास्त्री, हिन्दी प्रभाकर]

इसमें हिन्दी काव्य-विवेचना का संक्षेप प्रश्न और उत्तर के रूप में दिया गया है और पुस्तक में आई हुई सब कविताओं के अर्थ भी दिए गए हैं।

सरल-पत्र-लेखन

(ले०—श्री केशवप्रसाद शुक्ल विशारद)

इसमें घरेलू पत्र, व्यावहारिक पत्र, निमन्त्रण-पत्र और अर्जी आदि लिखने का ढंग बड़ी सरल भाषा में समझाया गया है। पत्र लिखना सीखने के लिए सर्वोत्तम पुस्तक। हिन्दी-भूषण के प्रत्येक विद्यार्थी के पास यह पुस्तक ज़रूर होनी चाहिए। मू० ।) मात्र।

भारतवर्ष के इतिहास की प्रश्नोत्तरी

(दूसरा भाग)

[ले०—ला० सीनदत्त सूद, अध्यापक कन्या-महाविद्यालय, जालंधर]

इस पुस्तक में प्रो० वेदव्यास और प्रो० गुलशनराय के भारतवर्ष के इतिहास के आधार पर वास्कोडिगामा के भारत-प्रवेश से लेकर आज तक का भारतवर्ष का इतिहास प्रश्न और उत्तर के रूप में दिया गया है। मूल्य ।=)

सारथी से महारथी

(मौलिक नाटक)

श्रीसेठिया जैन ग्रन्थालय ।
बीकानेर ।

लेखक—
सन्त गोकुलचन्द्र शास्त्री, बी. ए.

द्वितीय संस्करण
२०००

१९५०

मूल्य १।=) अजिल्द
१॥=) सजिल्द

प्रकाशक—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
साहित्य भवन,
४१, मुझंग रोड, लाहौर।



मुद्रक—
ला० देवराज एम. ए
नीली बार प्रेस,
रामनगर, लाहौर।

नाटक के पात्र

पुरुष पात्र

युधिष्ठिर भीम अर्जुन	कुन्तीपुत्र	पांच पांडव (भाई)
नकुल सहदेव	माद्रीपुत्र	

अभिमन्यु—अर्जुनपुत्र
घटोत्कच—भीमपुत्र
धृष्टद्युम्न—द्रुपदपुत्र (द्रौपदी का भाई)
श्रीकृष्ण—यादवेश (अर्जुन का सारथी)
धृतराष्ट्र—हस्तिनापुर-नरेश (दुर्योधन आदि का पिता)
दुर्योधन—धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र
कर्ण—राधापुत्र (वास्तव में कुन्तीपुत्र)
शकुनि—दुर्योधन आदि का मामा
दुःशासन—दुर्योधन का भाई
विकर्ण—दुर्योधन का भाई
भीष्म—कौरव-पांडवों का पितामह
द्रोण—भरद्वाज का पुत्र, कौरव-पांडवों का अस्त्रविद्याशिक्षक
शल्य—मद्रराज (कर्ण का सारथी)
विदुर—धृतराष्ट्र का छोटा भाई

कृपाचार्य—द्रोणाचार्य का साला; कौरव-पांडवों का शिक्षक
अश्वत्थामा—द्रोणाचार्य का पुत्र

सैनिक
दर्शक
ब्राह्मण

जरासन्ध
जयद्रथ } द्रौपदी स्वयंवर में उपस्थित राजगण
शिशुपाल

अधिरथ—सूत (कर्ण का पोषक पिता)

स्त्रीपात्र

गांधारी—धृतराष्ट्र की स्त्री (दुर्योधन आदि की माता)
कुन्ती—पांडु की स्त्री (कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन की माता)
द्रौपदी—अर्जुन की स्वयंवर-विजिता स्त्री
पद्मावती—कर्ण की स्त्री
राधा—कर्ण की पोषिका माता

दो चार शब्द

मुझे हिन्दी-संस्कृत बोर्ड का सदस्य होने की हैसीयत से कई नए और पुराने लेखकों के भिन्न भिन्न विषयों पर नाटक-ग्रन्थों के पढ़ने का अवसर मिलता रहा है। कहावत है—खरबूजा खरबूजे को देख कर रंग बदलता है। अतः मुझमें भी इस क्षेत्र में कूदने का शौक उठा। उसका परिणामस्वरूप यह नाटक सहृदय पाठकों के सामने प्रस्तुत है। यह मेरा प्रथम प्रयास है, इसमें कोई शक नहीं—पर मैंने इसे परिश्रम से लिखा है—जैसे कि प्रथम कृति को हरेक लेखक लिखता है। यह अच्छा है या बुरा है इस का निर्णय पाठक और समालोचक करेंगे।

कर्ण को ही अपनी कृति का नायक मैंने क्यों बनाया है-इसका विशेष कारण है। भारतीयसत्ता की नाव आज कल ऐसे समुद्र में बह रही है जो विक्षुब्ध है, जिसमें रहने वाले अनेक ग्राह उसे टक्कर से चकनाचूर करने को उद्यत हैं। उस नाव को सुरक्षित पार लेजाने का भार उन नवयुवकों पर है जो उत्साही, धैर्यावलंबी और प्रति-कूल परिस्थितियों में भी घबराने वाले न हों। ऐसे नवयुवकों के सामने अनुकरणार्थ ऐसे महापुरुषों के जीवन चाहियें जिन में ये गुण विद्यमान हों। मुझे भारत के प्राचीन और अर्वा-चीन इतिहास में एक कर्ण ही ऐसा मिला है जिसका जीवन नवयुवकों के जीवन को ऐसे सांचे में ढाल सकता है।

कर्ण का जीवन संघर्ष का जीवन था। उत्पन्न होते ही माता ने पानी में बहा दिया। दैवात् मृत्यु से तो बच गया, पर हाथ किस के लगा ?–एक सूत के। उन दिनों शूद्रों का समाज में जो स्थान था वह किसी से छिपा नहीं। किसी और के हाथ लग जाता तो शायद उसे अपनी स्वाभाविक शक्तियों के प्रदर्शन का अनुकूल अवसर मिल जाता, पर शूद्र को कौन पूछता था!

सूतपुत्र होने के कारण ही द्रोणाचार्य ने उसे उच्चकोटि की अस्त्र विद्या देने से इनकार कर दिया, परशुराम जी ने पढ़ाई हुई विद्या वापस लेली, द्रौपदी-स्वयंवरमें मारा हुआ मैदान उसके हाथ से निकल गया. फिर भी वह हताश नहीं हुआ। भाग्य का –दुर्भाग्य का मुकाबला डट कर करता रहा। परिणाम यह हुआ कि दुर्योधन के आधिपत्य में उसे अपनी अन्तर्लीन शक्तियों के प्रदर्शन का अवसर तो मिला, पर बहुत थोड़ा। कारण यह था कि उसे एक ऐसे व्यक्तिका अवलम्बन लेना पड़ा, जो ईर्ष्या, मद, लोभ और मोहके अथाह सागरमें बह रहा था। कर्णको भी अपने उन्नायक का अनुसरण करना पड़ा। इसलिए श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोण, विदुर और दूसरे गण्य-मान्य नेता उस के विरुद्ध हो गये, बात बात में उसे उन लोगों की खरी-खोटी बातें सुननी पड़ती थीं। फिरभी उसने जीवट को नहीं छोड़ा। उस का ध्येय था अर्जुनवध—और उस की पूर्ति में वह एक कदम भी लक्षित मार्ग से इधर उधर नहीं हुआ। उसके जो विरुद्ध थे, वे भी उस की वीरता, दानवीरता और स्वाभि-

मानता के कायल थे। श्रीकृष्ण और शल्य ने उस की प्रशंसा की है। माता कुन्ती के शब्दों में—

"वह शूर था, वीर था, उत्साही था, दानी ... का पक्का था। सारथी के घर पल कर—उस का पुत्र ... में महारथी का पद पाना उसी का काम था। ... (पांडवों) जैसे वीरों का उसे मुकाबला करना ... उसे भाग्य से भी लड़ना पड़ता था।"

भारत के हतभाग्य युवकवर्ग का ... होना चाहिये क्यों कि "उसकी ... पराकाष्ठा है। कर्ण मरा नहीं जीवित है ... रहेगा। उसका जीवन वीरों का आदर्श ... वीरता के इतिहास में सदा सुवर्णाक्षरों ...

पहला अंक

पहला दृश्य

(समय–सायंकाल, स्थान—नदीतट पर एक रम्य वन, एक स्त्री और उसका पति दोनों बैठे हैं)

अधिरथ—कैसा सुहावना समय है !

राधा—और कैसी शीतल बयार चल रही है !

अधिरथ—इन हरे-भरे वृक्ष और लताओं को देख-देख नयन श्रान्त ही नहीं होते।

राधा—और उन पर उछलते-फुदकते पक्षियों के कलरव को सुन कर कान तृप्त ही नहीं होते।

अधिरथ—इस कलनादिनी नदी को भी देखो। कैसी इठलाती और मदमाती चाल से सागर की ओर चल रही है !

राधा—यही चाल नवोढा वधू की होती है, जब उसे पतिदेव के प्रथम दर्शन की लालसा रहती है।

अधिरथ—ज़रा नभो-मण्डल को भी तो देखो—कैसी काली घटा छाई हुई है !

राधा—यही काली घटा नाथ, समस्त [illegible]

अधिरथ—इसमें क्या सन्देह। जब यह वसंतऋतु का प्रवाह बहता है तो उसे पान कर समस्त प्रकृति उन्मत्त होकर नाचने लगती है।

राधा—समस्त वनस्पति में नया जीवन आ जाता है, वह लहलहाने लग जाती है।

अधिरथ—सृष्टि के कण-कण में नव-जीवन का संचार होने लगता है। लता-वृक्ष आदि में नई स्फूर्ति आ जाती है—

राधा—और वे आनन्द से नाचने लगते हैं। अपने फल-फूलों को देख-देख मानो आनन्द से झूमने लगते हैं। आओ नाथ, हम भी प्रकृति देवी के उल्लास और आनन्द की धारा में अपने आप को बहा दें।

अधिरथ—(अनमना होकर) राधे, कैसा अच्छा होता यदि हम भी इन फलते-फूलते वृक्षों के उल्लास और आनन्द का रसास्वादन करते! पर...

राधा—पर क्या? कहते-कहते रुक क्यों गये स्वामी?

अधिरथ—पर जब कभी ऐसे समय में मेरे हृदय में विनोद और आह्लाद की रेखा का उदय होने को ही होता है तो उसी समय एक अलक्षित वेदना हृदय में उठती है। उसी के बोझ के—असह्य बोझ के नीचे दबकर सारा का सारा विनोद और आल्हाद चूर्ण हो जाता है। क्या कभी इन फले-फूले वृक्षों की तरह भाग्यवान

होंगे ? क्या हमारे जीवन-वृक्ष की सूखी डालियों के साथ भी ईश्वर कभी ऐसे सुन्दर फल...............'

राधा—(प्रेम से) अवश्य लगायेंगे नाथ । ऐसी साधारणसी बात के लिए दिल को छोटा न करना चाहिए प्राणधन । ईश्वर के अक्षय भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं। किसी न किसी दिन वे हम कंगालों की भी करुण-पुकार सुनकर हमारी फैलाई हुई झोली भरेंगे ।

गाना

हरि, मत और अधिक तरसाओ ।

हम चातक तुम घनश्याम हो, करुणाजल बरसाओ ॥ हरि मत० ॥

आँखें प्यासी उस दरसन को, अब तो झलक दिखाओ ॥हरि मत० ॥

सूना सब घरबार तनय बिन, सुत-आनन दरसाओ ॥हरि मत०॥

(किसी नवजात शिशु के रोने की आवाज़ आती है ।)

अधिरथ—(कान लगाकर) सुनती हो—किसी बालक के रोने की आवाज़ आ रही है ।

(गाना छोड़कर, कान लगाती है ।)

राधा—मालूम तो यही होता है और आवाज़ भी नदी में से आ रही है । चल कर देखें तो ?

अधिरथ—हां, चलो देखें । (दोनों चलते हैं ।)

(नदी के किनारे पहुँच कर और भी देखकर)

राधा—(नदी में देखती हुई) देखिये, यह क्या पिटारा सामने आ रहा है?

अधिरथ—कोई पिटारा है। वह इधर ही आ रहा है।

(इतने में पिटारा बहकर किनारे लग जाता है और अधिरथ उसे उठाकर खोलता है)

राधा—(देखकर, विस्मय से) अरे! पिटारेमें एक नवजात शिशु रखा है।

अधिरथ—(ध्यान से देखकर) इसके नीचे किसी ने एक लकड़ी का पटला दे रक्खा है कि कहीं यह डूब न जाय। ऐसा क्रूर व्यवहार करते हुए भी उसके मन की कोमल भावनाओंका सर्वथा लोप नहीं हो गया था। मालूम होता है उसे इसका ख्याल हुआ था, परन्तु नहीं।

(राधा बालक को उठा लेती है)

राधा—(खुशी से) कैसी मधुर मुसक्यान!

अधिरथ—कैसा कमलसा खिला हुआ मुख!

राधा—ईश्वर ने हमारी करुणपुकार सुन ली है।

अधिरथ—और हमें सुन्दर बेटा दे दिया है।

राधा—इससे मेरी गोद हरी हो गई है।

अधिरथ—मेरे घर में उजाला हो गया है।

राधा—यह कोई बड़ी पाषाणहृदया जननी होगी जिसने ऐसे लाल को त्याग कर अपनी गोदी सूनी कर ली है।

तो हरी हो गई है।

राधा—संसार की गति ही ऐसी है प्राणवल्लभ। एक सूना होता है और दूसरा भरपूर होता है ; कोई उजड़ता है, कोई बसता है। सूर्य अपने पीछे अन्धकार छोड़ कर आगे उजाला करता है। समझ में नहीं आता, ऐसे चान्दसे सुन्दर बालक को त्यागने का कारण क्या होगा।

अधिरथ—राधे, वह बेचारी कोई विपद की मारी होगी। माता का मोह तुम जानती ही हो ! उसने विवश होकर ऐसा किया होगा। बेचारी अब भी आठ-आठ आंसू रो रही होगी।

(बालक रोने लगता है)

राधा—(गोदी में झुलाती हुई मुंह को चूम कर) न रो मेरे लाल ! देखो, रोओगे तो मैं न बोलूंगी।

अधिरथ—(हंसी के साथ) लो, तुम तो सचमुच इस की मां बन बैठी हो।

राधा—मां नहीं हूँ तो और कौन हूँ। क्या मां के सिर पर कोई सींग होते हैं। स्त्री का हृदय बड़ा विशाल होता है स्वामी। वह जिसे वहां एक बार स्थान दे देती है, फिर उसे वहां से अलग नहीं होने देती। फिर स्नेहबंधन ! वह तो एक विचित्र बंधन है ! कई बार दो अपरिचित व्यक्तियों को भी यह ऐसे दृढ़ पाशों से बांध देता है कि संसार की कोई शक्ति भी उन पाशों को तोड़ नहीं सकती।

[illegible]

राधा—तथास्तु !

गाना

राधा—हरि से मम विनती सुमली है ।
चन्द्रसरिस सुत-सुत विलोकि मम हृत्कुमुदिनी विकसी है ॥हरिसे॰
अधिरथ—जीर्ण-शीर्ण जर्जरित देह को सुलभी लाठी भी है ॥ हरिसे॰
दोनों—अंधकारमय इस जीवन में चन्द्रज्योत्स्ना की है ॥ हरिसे॰
जुग जुग जियो मनोने बेटा, प्रभु से विनय यही है ॥ हरिसे॰

(दोनों गाते-गाते, आनन्द से उछलते-कूदते, बालक को लिये निकल जाते हैं) ।

दूसरा दृश्य

(समय-मध्याह्न, स्थान-एक खुला मैदान, कई बालक खेल रहे हैं)

एक लड़का—हम लोग प्रतीक्षा करते करते थान्त होगये, पर कर्ण अभी तक नहीं आया ।

दूसरा लड़का—आता कैसे ! पिता के साथ कहीं रथ हाँक रहा होगा ।

(मा. शिक्ष. शिक्षक, जैन, गामे. दे.)

तीसरा लड़का—अरे ! रथ कहाँ हाँक रहा होगा-कपड़ा बुन रहा होगा-जुलाहे का पोता जो ठहरा ! (फिर सब हंसते हैं)

पहला लड़का—सुना है यह नदी में डूब रहा था, अधिरथ ने इसे बचाया है ।

दूसरा लड़का—और पुत्र की तरह पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है।

तीसरा लड़का—किसी बड़े भाग्यवान का लड़का मालूम होता है।

दूसरा लड़का—होगा, पर अब तो सारथी का बेटा है।

चौथा लड़का—तुम लोगों को ऐसी बातें करते लज्जा नहीं आती? कर्ण की उपस्थिति में तो तुम्हारे देवता न मालूम कहां कूच कर जाते हैं, मुँह में जबां नहीं रहती, भीगी बिल्लीसे बन जाते हो।

पहला लड़का—बातें तो तूने पते की कहीं। कर्ण की उपस्थिति में उसकी बात तक काटने का किसी को साहस नहीं होता। सच्ची बात तो यह है कि उसके अलौकिक और तेजस्वी मुख की ओर हम नजर उठाकर देख भी नहीं सकते।

दूसरा लड़का—देख भी क्योंकर सकें! उसके सुवर्णमय कुंडल और कवच पर जिस समय सूर्य की ज्योति प्रतिबिम्बित होती है तो उसका सारा शरीर ही सुवर्णमय दीखने लगता है। अनेकों सूर्यों का प्रकाश मानो एकत्र हो जाता है।

चौथा लड़का—मेरे पिता जी कहते हैं कि वह मनुष्य नहीं देवता है, शायद किसी शाप के कारण स्वर्ग छोड़ कर भूमण्डल पर आया है।

...का—यह बात भी ठीक हो सकती है।

सुवर्णमय कुण्डल और कवच सहित उत्पन्न हुआ न देखा है और न सुना है।

(सहसा एक वन्य सुअर आकर लड़कों को मारने दौड़ता है। सब लड़के भागने लगते हैं। एक तीर सामने से आकर सुअर के माथे पर लगता है। वह चिल्लाता-चिल्लाता भाग जाता है। इतने में कर्ण आता है।)

कर्ण—(धनुष पर तीर चढ़ाये) भाइयो, भागो नहीं। सुअर तो भाग गया, तुम क्यों भाग रहे हो ?

सब (इकट्ठे होकर)—कर्ण भैया, तुमने देर क्यों कर दी ?

चौथा लड़का—(दूसरे और तीसरे लड़कों की ओर इशारा करके)। ये कह रहे थे कि—

(वे दोनों लड़के हाथ जोड़ने के इशारे से उसे मना करते हैं)

कर्ण—बताओ, बताओ क्या कह रहे थे ?

चौथा लड़का—कह रहे थे कि......कि......कर्ण माता पिताकी सेवा में लीन होकर हमें भूल गया होगा।

कर्ण—मेरे भाग्य में कहां कि मैं माता-पिता की यथेष्ट सेवा कर सकूं ! फिर भी जितनी बन पड़ती है, उसे करना अपना अहोभाग्य मानता हूँ। मेरी तुच्छ सेवा से प्रसन्न होकर जब ये मुझे आशीर्वाद प्रदान करते हैं तो चित्त में ऐसा भान होता है कि मानो मुझे त्रिलोकी का साम्राज्य मिल गया है। पर इस समय मुझे उनकी सेवा का सौभाग्य नहीं मिल

तीसरा लड़का—तुम और क्या कर रहे थे ?

कर्ण—मैं अस्त्रविद्या का अभ्यास कर रहा था।

दूसरा लड़का—क्या अकेले ही ?

कर्ण—हां, अकेले ही। क्या अकेले अभ्यास नहीं किया जासकता? जैसा मनो-योग एकान्त में अकेले अभ्यास करने से हो सकता है वैसा अन्यत्र नहीं।

चौथा लड़का—तुम ने अस्त्रविद्या की दीक्षा किससे ली है ?

कर्ण—अभी तक तो किसी से नहीं ली।

दूसरा लड़का—तो बिना गुरुदीक्षा के तुम ने इतना कुछ सीख लिया है ?

पहला लड़का—तब तो कमाल है !

दूसरा लड़का—बिलकुल कमाल है !

कर्ण—कमाल-वमाल कुछ नहीं। साधना से किया काम सदा फल-प्रद होता है।

चौथा लड़का—कर्ण भैया, एक बात मैं अवश्य कहूँगा। मनुष्य स्वयं चाहे किसी भी विद्या में कितना ही प्रवीण क्यों न हो जाय, किन्तु उस विद्या के वास्तविक मर्म का ज्ञान गुरुदीक्षा के बिना कभी नहीं प्राप्त होता है।

कर्ण—यह तो मैं भी मानता हूँ, पर मुझे दीक्षा देगा कौन ?

चौथा लड़का—कौन नहीं देगा! आप आचार्य द्रोणजी के पास क्यों नहीं जाते ? वे तुम्हें अवश्य अस्त्रविद्या सिखाएंगे।

द्रोण कौन हैं और कहां रहते हैं ?

चौथा लड़का—क्या आचार्य को भी नहीं जानते ? आचार्य द्रोणजी महर्षि भरद्वाजजी के सुपुत्र हैं, आज कल भीष्मजी की देख-रेख में कौरव और पांडव कुमारों को अस्त्रशिक्षा दे रहे हैं। उन जैसा अस्त्रशास्त्रवेत्ता संसारभरमें कोई नहीं है। आप जैसे सुपात्र शिष्य को पाकर वे प्रसन्न होंगे।

कर्ण—भाई, तुम ने यह बात बताकर मुझ पर बड़ा उपकार किया है। मैं आजीवन तुम्हारा आभारी रहूँगा। अब मैं वहीं जाने का उपाय करता हूँ। (सब से) भाइयो, मुझे अब विदा दो।

सब—कर्ण भैया, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। पर हमें भूलना नहीं।

कर्ण—क्या बाल्यसखा भी कभी भूल सकते हैं ?

(बातें करते करते सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

(स्थान—अधिरथ का घर, एक कमरे में कर्ण आवेग के साथ नीचे-ऊपर टहल रहा है।)

कर्ण—(अपने आप, आवेग से) सूतपुत्र—सूतपुत्र—सूतपुत्र ! जहां जाता हूँ कानमें यही शब्द प्रतिध्वनित होते हैं–सूतपुत्र-सूतपुत्र। नदी की लहरों से, वायुमंडल से, घर की दीवारों तक से भी यही आवाज़ आती है। ... ब्द पीछा नहीं छोड़ता।

(कुछ सोचकर) अपमान जनक क्यों ? 'गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः' ।

सूतपुत्र हूँ तो क्या ! मैं किस बात में किसीसे हीन हूँ ! क्या मुझ में ब्राह्मणों जैसा मस्तिष्क नहीं, क्षत्रियों जैसी बलिष्ठ भुजायें नहीं और उन भुजाओं में शस्त्र थामने की शक्ति नहीं ? (चिन्तानिमग्न होकर) फिर भी मैं जहां जाता हूँ मुझे सूतपुत्र और शूद्र कह कर चिढ़ाया जाता है। इससे मेरे नाक में दम आ गया है। लुटेरों की तरह जान छिपाये भागा फिरता हूँ।

तीन चार दिन की बात है—खेलते-खेलते समवयस्क साथियों से कुछ अनबन होगई। वे थे चार और मैं अकेला, चारों को खूब पीटा। इतने में एक ब्राह्मण देवता वहां आ निकले और मुझे यह कह कर लगे धमकाने कि शूद्र होकर तुम्हारी क्या मजाल कि इन उच्चवंशीय बालकों का सामना करे ! उस के ये वचन न थे, पैने तीर थे। मेरे दिल में चुभ गये। अपनासा मुंह लेकर मैं घर में आ गया।

कल की ही एक और घटना है। मैं आचार्य द्रोण से अस्त्रविद्या सीख रहा था। द्रोण जी की अर्जुन पर विशेष कृपा रहती है। उन्होंने उसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग और संहार सिखाया है। मैंने भी उनसे वही अस्त्र मुझे सिखाने को विनय किया। जो उत्तर आचार्य ने दिया वह अब भी हजारों बिच्छुओं की तरह मेरे अंग-अंग को [illegible]

है। उन्होंने कहा-ब्राह्मण और क्षत्रिय के सिवा इस अस्त्र का और कोई अधिकारी नहीं।' उन के विचार में शूद्रों का ईश्वरीय सृष्टि में अस्तित्व ही नहीं। माना कि शूद्रों का स्थान समाज में बहुत नीचा है, सामाजिक शरीर के वे पाँव माने जाते हैं, पर शरीर का अङ्ग तो हैं। पाँव ही सही। क्या पाँव निष्क्रिय हैं। कभी नहीं, पाँव न हों तो समूचा शरीर ही निकम्मा है। (और भी आवेग से) यह सूतपुत्र कर्ण समाज में शूद्रों को अधिकार प्राप्त करा कर ही दम लेगा। क्षत्रियपन का गर्व करने वाले अर्जुन से नाकों चने चबवायेगा। जिस अर्जुन के लिये आचार्य ने मेरा इतना अपमान किया है, उसका वध ही मेरे जीवन का ध्येय होगा। (कुछ ठहर कर) पर करूं क्या ! कोई साधन भी तो पास नहीं। शस्त्रविद्या के ठेकेदार भी तो ब्राह्मण और क्षत्रिय ही हैं। वे मुझे अस्त्रशिक्षा क्यों कर देंगे। (फिर आवेश से)—सूतपुत्र............

(एक ओर से अधिरथ आता है और छिप कर कर्ण की बातें सुनता है।)

कुलहीनता का भारी पत्थर मेरे गले से ऐसे ज़ोर से बांधा हुआ है कि संसारसागर में मुझे यह नीचे की ओर ही लिये जा रहा है, ऊपर उठने ही नहीं देता। विधाता यदि मुझे सूतकुलजन्म के साथ अनुभवशक्ति प्रदान न करता तो मुझे ज़रा भी कष्ट न होता। अपने कुल के दूसरे

ोगों के साथ में भी ऐसे जघन्य अपमानों को सहिष्णुता
। सहता और उनकी परवाह न करता।

-(अपने आप) हा दैव ! मैं ही कर्ण के कष्टों का कारण हूँ। यदि मैं इसे नदी से निकाल कर अपने घर न लाता तो शायद किसी कुलीन व्यक्ति के हाथ में आकर यह भी कुलीन माना जाता और सूतपुत्र होने के अपमानसे मुक्ति पाता। शुभ संकल्प से किये परोपकार का भी कभी कभी कैसा बुरा परिणाम होता है-इसका उदाहरण मुझे आज मिला है तो क्या मैं इसे वास्तविक परिस्थिति का परिचय देकर इसके मानसिक बोझ को हलका कर दूं ? (सोच कर) नहीं, ऐसा करने से घोर अनिष्ट होने की आशंका है। इस में न इसका लाभ है और न हमारा। यह हमें छोड़ कर दर-दर भटकता फिरेगा और इसके स्नेहपाश में बंधे हुए हम इसके वियोग को न सह सकेंगे। (पास आकर और सिर पर हाथ रख कर) कर्ण, क्या सोच रहे हो बेटा ? आज तुम्हारा चेहरा सूर्य के प्रचंड ताप से म्लान कमल की तरह क्यों मुरझाया हुआ है ?

ाथ जोड़ कर और आंखों में आंसू भर कर) पिताजी, क्या शूद्रों
ा ... में कोई स्थान नहीं ? क्या वे मनुष्यसमाज
...ा होने का भी अधिकार नहीं रखते ?

इन्हें क्यों ठुकराया जाता है ? पिता जी, कहिए, मनुष्य-समाज की दृष्टि में ये क्यों इतने गिरे हुए माने जाते हैं ?

अधिरथ—बेटा, वास्तव में हम लोगों का मनुष्यसमाज में कोई स्थान नहीं। हमारी सत्ता ही नहीं मानी जाती। हमारे साथ पशुओं से भी घृणिततर बर्ताव होता है। पर किया क्या जाय ? यह दुर्गति सहनी ही पड़ती है।

कर्ण—पर मैं न सहूँगा पिताजी। अपनी तपश्चर्या और भुजबल के प्रताप से अपने कुल का नाम समुज्ज्वल कर अपनी जाति को ऊंचा करूंगा। बताइये पिताजी, है कोई ऐसा व्यक्ति जो शूद्रोंको अस्त्रविद्या दे सके ? यदि है तो वह चाहे संसार के किसी दूरतम कोने में भी छिपा हो, मैं उसके चरणों की रज माथे पर चढ़ाऊंगा और आजीवन उसका किंकर रह कर उससे धनुर्विद्या सीखूंगा।

अधिरथ—पर ऐसा है कौन जो हम लोगों के साथ कुछ सहानुभूति रखता हो ? मुझे तो ऐसा कोई नहीं दीखता। हाँ, जमदग्निपुत्र परशुराम जी अस्त्रविद्या के पारंगत हैं। इस विद्या में कोई भी उनके जोड़ का नहीं। वे क्षत्रियों के परम शत्रु हैं, इस से उन्हें अस्त्रविद्या नहीं देते, पर शूद्रों को भी नहीं देते—ब्राह्मण हैं—कट्टर ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों को ही अस्त्रशिक्षा देते हैं। आचार्य द्रोण जी के भी वे ही गुरु हैं।

कर्ण—आचार्य द्रोण के भी वही गुरु हैं! तो मैं उन्हीं से ही अस्त्रविद्या सीखूंगा—जैसे भी हो, अवश्य सीखूंगा; और आचार्य द्रोण और उनके प्रिय चेले अर्जुन का मानमर्दन करूंगा।

अधिरथ—पर यह होगा कैसे ?

कर्ण—जैसे भी हो, यह करना होगा। (आवेश से)
प्रणाम पिता जी। (प्रणाम करके प्रस्थान)

अधिरथ—कर्ण मेरे लिए एक पहेली है। इस में अवश्य कोई देव-अंश है। ये जन्मजात सौवर्ण कुण्डल और कवच किसी मनुष्य के कभी हुए हैं ? (आकाश की ओर देखकर) ईश्वर, मेरे कर्ण के तुम ही रक्षक हो।

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

(स्थान—एक वन, कर्ण एक वृक्ष के सहारे खड़ा है। उसकी वेषभूषा ब्राह्मणों की सी है, हाथ में धनुष और कंधे पर तूणीर है।)

कर्ण—(अपने आप) अभ्यास करते करते मैं श्रान्त हो गया हूँ। गुरुजी ने जितने प्रकार की अस्त्रविद्या सिखाई थी उसके अभ्यास में अब कोई न्यूनता नहीं रही। (व्यंग्य से) आचार्य ने मुझे ब्रह्मास्त्र नहीं दिया तो क्या ? वही ब्रह्मास्त्र मैंने गुरु [illegible] से ले लिया है। आचार्यने भी तो इन्हींसे-

था। अब अर्जुन मुझ से किस बात में अधिक है! जब उसका और मेरा सामना होगा तो पता लग जायगा उसे आटे-दाल का भाव; तब देखूंगा किस करवट ऊँट बैठता है! ब्रह्मास्त्र उसके पास भी है और मेरे पास भी। रही यह बात कि उससे लाभ कौन उठायेगा—इसका निर्णय समय करेगा। (सामने देखकर) सामने लताओं के झुरमुट में कौन जीव है! ऐसा ज्ञात पड़ता है कि कोई वनपशु खेत का ध्वंस कर रहा है। इसका संहार करना चाहिए। वनपशु के संहार के साथ ही शब्दवेधी बाण की परीक्षा भी हो जायगी। (धनुष पर तीर चढ़ाकर छोड़ता है। तीर लगने से एक गाय के रंभाने की आवाज़ आती है।) (चकित होकर) यह तो गाय की आवाज़ है। कहीं मैंने धेनुवध तो नहीं किया! (भागकर उधर जाता है। गाय को मरी पड़ी देख कर) मैंने कैसा अनर्थ कर डाला! अज्ञान से जगन्माता पयस्विनी धेनुका वध कर डाला है। मैं कैसा अभागा हूं! दुर्भाग्य मेरा पीछा नहीं छोड़ता। जो करता हूँ शुभ संकल्प से करता हूँ, पर होता है बिलकुल विपरीत। (कुछ चिन्तित होता है)।

(सहसा एक ब्राह्मण आता है)

ब्राह्मण—(ज़ोर से) कपिला, अरी कपिला! कहां चली गई री! (अपने आप) आज कहीं दूर निकल गई मालूम होती

है। पहले तो मेरे एक ही बार बुलाने पर रंभाने लग जाती थी और प्रेम से उछलती कूदती मेरे पास आती थी–

(सहसा कर्ण उस के पास आता है।)

कर्ण—(अपराधीसा, हाथ जोड़ कर) पर अब आपके अनन्त काल तक बुलाते रहते भी न रंभायेगी और न आपके पास आयेगी।

ब्राह्मण—कारण ?

कर्ण—उस की हत्या हो गई है।

ब्राह्मण—(व्याकुल होकर) किस के द्वारा ?

कर्ण—मुझ अधर्मी और पापी के द्वारा।

ब्राह्मण—मेरी यज्ञधेनु की हत्या करने वाले अधर्मी, पापी, नारकी, तूं ब्राह्मण नहीं चांडाल है। ब्राह्मण के पवि नाम को कलङ्कित करने वाला वास्तव में दानव है।

कर्ण—(हाथ जोड़कर) क्षमा कीजिये महात्मन, मैं ब्राह्मण नहीं हूं।

ब्राह्मण—यदि ब्राह्मण नहीं है तो तू कौन है ? कपटवेष में ब्राह्मण जाति को घोर पाप से लांछित करने वाला तूं कौन है ?

कर्ण—मैं सूतपुत्र हूं।

ब्राह्मण—सूतपुत्र है ? तो इस कपटवेष से ब्राह्मण के पवित्र नाम को कलुषित क्यों कर रहा है ?

कर्ण—यह न पूछिये महात्मन्, इस बात को कुछ काल तक गुप्त

ब्राह्मण—गुम रहने दूं ? क्यों ? (कुछ ठहर कर) नहीं बतलाता अच्छा, न बता, मैं स्वयं योगदृष्टि से इस का पता लगा लेता हूँ ।

(आंखें मूंद कर और ध्यानावस्थित होकर, फिर कुछ समय बाद आंखें खोल कर) लग गया पता । छल-कपट जैसे घृणित व्यवहार से तू परशुराम जी से अस्त्रविद्या सीख रहा है । छि: छि: ! ऐसे कुकार्य से अस्त्रविद्या जैसी पवित्र विद्या को प्राप्त करने की चेष्टामात्र करना भी अति जघन्य कर्म है ।

कर्ण—महात्मन्, क्षमा करें । मैं इतना पापी नहीं जितना आप मुझे समझ रहे हैं । मैंने वेषपरिवर्तन एक ध्येय की पूर्ति के लिये किया है ।

ब्राह्मण—मुझे सब बात का पता लग गया है राधेय । जिस उद्देश्य से तू यह सब कुछ कर रहा है उस में तुझे कभी सफलता न होगी । जिस को नीचा दिखाने के लिये तूने यह वेष धारण किया है, और जिस से तू सदा लाग-डाँट रखता है उसी से युद्ध करते समय तेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जायगा और वह तेरा वध कर देगा । गौ माता की हत्या के कारण गौ (पृथ्वी) ही तेरे वध का निमित्त होगी ।

कर्ण—(हाथ जोड़कर) ऐसा शाप न दीजिए महात्मन् । इस से तो मुझे मार ही डालिये । मैं सब प्रकार के अपमान सहने को प्रस्तुत हूँ, पर अर्जुन से परास्त होने का अपमान

न सह सकूंगा। इस शाप से मुझे मुक्ति दीजिए। और कोई भी दण्ड दीजिए, पर यह यन्त्रणा मुझ से न सही जायगी।

ब्राह्मण—कर्ण, ऐसे घोर पाप का दण्ड भी ऐसा ही घोर होना चाहिये। यह शाप अक्षरशः सत्य होगा। मेरे वचन मिथ्या न होंगे। (जाता है।)

कर्ण—(निराश होकर) दुर्भाग्य ने यहां भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। (कुछ ठहर कर) यद्यपि मेरे भाग्य में विफलता ही लिखी है तो भी मैं कमर कसकर उस का साम्मुख्य करूंगा। ऐसी परिस्थितियों में क्यों व्याकुल होने का नहीं। बाधायें कायरों के लिए होती हैं, वीर नर तो उन से और भी उत्तेजित होकर कर्मपथ पर अग्रसर होते हैं।

(प्रस्थान)

पांचवाँ दृश्य

(*स्थान—परशुराम जी का आश्रम*)

कर्ण—(शोक-मग्नता) इतने दिनों की घोर तपस्या को एक ही शाप ने विफल कर डाला है। जब विधाता ही मेरे वाम है तो मैं और किसी से क्या कहूँ! (कुछ सोच कर) आज प्रातः से न जाने चित्त बेचैनसा क्यों हो रहा है! उस में ... विचारतरंगें उठती और विलीन हो रही हैं। न... ...कस भावी घटना की सूचक हैं (...

कुछ भी हो जाय, कर्ण उनका सामना करेगा। बाधाओं के पहाड़को भी गुरुजीके बताये हुए एक ही शस्त्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न कर देगा। कर्ण के दिल में लोहे की दृढ़ता है और शरीर में इस्पात की समता है। उसका क्रोध अशनिपात के समान है—जहां गिरेगा उसे ध्वस्त-ध्वस्त कर देगा। एक अर्जुन क्या, सौ अर्जुन भी उसके सामने टिकने का सहास न कर सकेंगे।

(नेपथ्य से—कर्ण ! कर्ण !! ओ बेटा कर्ण !!!)

(सुन कर) यह तो गुरु जी की आवाज़ है। (ऊँचे स्वर में) आया गुरु जी ! (उठ कर जाना चाहता है)।

(परशुराम जी का प्रवेश, कर्ण विनीत भाव से हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम करता है)।

परशुराम—बेटा, आज मैं बहुत श्रान्त हो गया हूँ। एक तो कई दिनों का उपवास, उस पर यह लंबी यात्रा ! आख़िर अवस्था भी तो ढल रही है। अब शरीर से अधिक कष्ट नहीं सहा जाता। हाड़ मांस का ही तो बना है, इस्पात का तो नहीं।

कर्ण—आप मेरी गोद में सिर रखकर ज़रा विश्राम कीजिये, मैं अभी मुट्ठी-चंपी से आप की सब थकावट भगा देता हूँ।

परशुराम—मेरा जी भी यही चाहता है कि थोड़ी देर सुस्तालूं।

(कर्ण की गोद में सिर रख कर लेट जाते हैं)।

कर्ण—(कुछ समय तक उनके सिर को दाबने के बाद) सो गये। कितने श्रान्त थे ! लेटते ही गाढ़ निद्रा में चले गये।

(कर्ण की टांग में कुछ पीड़ा होने लगती है)

अहह ! दाईं टाँग में बड़ी पीड़ा हो रही है । ऐसा मालूम होता है जैसे सैकड़ों बिच्छू काट रहे हैं । (टांग को एक भयंकर मांसाहारी कीड़ा काटता नज़र आता है ।) क्या यही कीट काट रहा है ? ऐसा भयंकर मांसाहारी कीट मैंने आज तक नहीं देखा । ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर का सारा लोहू पीकर ही रहेगा । अरे ! पीड़ा तो बढ़ ही रही है । पर किया क्या जाय, न मैं इसे मार सकता हूँ और न भगा ही सकता हूँ । ज़रा भी हिला कि गुरु जी की निद्रा का भंग हुआ ।

परशुराम—(अकस्मात् आंखें खोलकर) अरे ! ये पानी यहां कैसे आगया ? सारा शरीर इससे तर होगया है ।

कर्ण—यह पानी नहीं गुरुजी ।

परशुराम—तो क्या है ?

कर्ण—यह लोहू है ।

परशुराम—लोहू ! (सहसा उठकर) लोहू कहां से आगया ?

कर्ण—मेरे शरीर से ।

परशुराम—तेरे शरीर से ! सो कैसे ?

कर्ण—गुरुजी, जब आप मेरी गोद में सिर धर कर सोगये तो एक भयङ्कर मांसाहारी कीट ने मेरी जंधा का मांस काट खाया, उसी घाव से यह रुधिर निकल रहा है ।

[illegible]—तुमने उसे हटाया क्यों नहीं ?

[illegible] ज़रा भी हिलता तो आपकी नींद टूट जाती ।

परशुराम—(अपने आप) इतनी सहिष्णुता ! फिर ब्राह्मण में ! विधाता ने ब्राह्मणों का हृदय कोमलतम स्नायुतन्तुओं से बनाया है, उसमें ऐसी कठोर यातना सहन करने की शक्ति हो ही नहीं सकती (कोप के आवेश में, कर्ण से) तू ब्राह्मण नहीं है-ब्राह्मण हो ही नहीं सकता । अग्नि अपनी दाहशक्ति चाहे छोड़ दे, पर ब्राह्मण कभी अपनी स्वाभाविक मृदुता को नहीं छोड़ सकता । ब्राह्मण और कठोरता ! नहीं नहीं, कदापि नहीं-तू ब्राह्मण नहीं हो सकता । मुझ से धोखा हुआ है । (क्रोध से आंखें लाल करके) सच बता नराधम, तू कौन है ? सच बता नहीं तो अभी शाप से भस्म कर देता हूँ ।

कर्ण—(हाथ जोड़ कर) क्षमा करें, भगवन् । मुझ से बड़ा अपराध हुआ है । मैंने आपको धोखा दिया है । इस पाप का प्रायश्चित करने को मैं तैयार हूँ । मैं ब्राह्मण नहीं, मैं सूत-पुत्र हूँ ।

परशुराम—सूतपुत्र !

कर्ण—हां गुरुदेव, मैं सूतपुत्र हूँ । मेरे पिता का नाम अधिरथ और माता का नाम राधा है । मैं आचार्य द्रोण जी का शिष्य हूँ । सूतपुत्र होने के कारण मुझे वे ब्रह्मास्त्र नहीं देना चाहते थे, अर्जुन को ही देना चाहते थे । उनके इस पक्षपात-युक्त व्यवहार और अपमान से मेरे हृदय पर बहुत गहरी चोट लगी । तत्काल मैंने निश्चय किया कि कहीं से भी ब्रह्मास्त्र प्राप्त करूंगा और अर्जुन की समता करूंगा । मैंने फिर सोचा, आप भी मुझ सूतपुत्र को अस्त्रशिक्षा न देंगे । इससे मैंने

असत्य-भाषणसा घोर अपराध किया है। मेरी यह विव-शता देखकर मुझे क्षमा दान दें। (उनके चरणों पर गिरता है।)

परशुराम—(क्रोध से) नीच, तेरे इस घृणित अपराध को मैं कभी क्षमा नहीं करूंगा। तू सूतपुत्र होकर पांडु-कुल-शिरोमणि अर्जुन का मुकाबला करना चाहता है! निस्सन्देह, मैं तुझे कभी अपना शिष्य स्वीकार न करता यदि मुझे तेरी वास्तविक गति का पता लग जाता।

कर्ण—(गिरा हुआ ही) क्षमा गुरुदेव!

परशुराम—मैंने पहले ही कह दिया है कर्ण, कि यह अपराध मैं क्षमा नहीं करूंगा, पर तुझे कोई बहुत कड़ा दण्ड भी नहीं देना चाहता, जो कुछ मैंने तुझे दिया है वही लौटा लेता हूँ। इसलिये यह शाप—

कर्ण—(भूमि से उठकर और हाथ जोड़ कर) क्षमा गुरुदेव, क्षमा-

परशुराम—कभी नहीं। इस लिये तुझे यह शाप देता हूँ कि जिस समय तू अर्जुन के साथ युद्ध करेगा उस समय मेरी दी हुई समस्त शास्त्र-विद्या तुझे भूल जायगी। पर मेरा शिष्य रहने से रण-भूमि में दूसरा कोई भी तेरे सामने न टिक सकेगा। तेरा नाम संसार में अमर रहेगा।

कर्ण—मैं अमरता क्या करूं! मैं अमरता नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ [illegible] ही बात—अर्जुन को नीचा दिखाना, —

परशुराम—कर्ण, अर्जुन के सखा कृष्ण हैं । यतः कृष्णस्ततो जयः ।

(प्रस्थान)

कर्ण—(आकाश की ओर) अर्जुन, मुकाबला तेरा और मेरा नहीं हो रहा है, हमारे भाग्यों का हो रहा है । मैं स्वीकार करता हूँ—तेरा भाग्य मेरे भाग्य से प्रबल है ।

जहां जाता हूँ दुर्भाग्य मेरा पीछा नहीं छोड़ता । फिर भी कर्ण ने कभी उत्साह छोड़ना नहीं सीखा । तेरा और मेरा सामना रण-स्थल में अवश्य होगा—परिणाम कुछ भी हो ।

छठा दृश्य

स्थान—*एक बाज़ार, समय मध्याह्न, लोग सड़क पर चल फिर रहे हैं ।*

एक मनुष्य—(सामने से आते दूसरे मनुष्य को) कहां जा रहे हो भाई देवदत्त ?

देवदत्त—उधर ही तो, जिधर सब लोग जा रहे हैं । क्या तुम नहीं चलोगे ?

यज्ञदत्त—भाई, जाने को जी तो चाहता है, पर क्या करूं घर के कामों ने नाक में दम कर रक्खा है, उन से छुट्टी ही नहीं पाने पाता ।

देवदत्त—अरे मित्र ! घर के कामों से तो तभी छुट्टी मिलेगी जब यमराज का निमन्त्रण आयेगा ।

यज्ञदत्त—तब तो छूटेंगे ही, किसी पर अहसान थोड़े करेंगे ।

(सामने से धर्मदेव और शान्तिदेव आते हैं ।)

धर्मदेव—(देवदत्त के कंधे पर हाथ रख कर) देवदत्त भैया, चलोगे न ?

देवदत्त—चलूंगा क्यों न ! मुझे यज्ञदत्त जैसे काम-काज थोड़े ही हैं । जब जी चाहता है काम करता हूँ, जब जी चाहता है उसे छोड़ देता हूँ ।

धर्मदेव—क्या यज्ञदत्त न आयेगा ? (यज्ञदत्त की ओर) अरे भाई, संसार के काम तो होते ही रहते हैं, पर ऐसा अवसर तुम्हारे-मेरे जीवनकाल में फिर आने का नहीं ।

शान्तिदेव—इस में क्या सन्देह है । मैंने सुना है कि राजकुमार बहादुरी के ऐसे ऐसे करतब दिखाते हैं कि देखने वाले दंग रह जाते हैं ।

धर्मदेव—जो बातें सुनी भी नहीं वे देखने को मिलेंगी । सुना है अर्जुन कुमार ने धनुर्विद्या में अति-प्रवीणता प्राप्त कर ली है । एक तीर चलाता है तो अंधकार हो जाता है ।

शान्तिदेव—और उसी दम जब एक और छोड़ता है तो न जाने अन्धकार कहां रफूचकर हो जाता है—सर्वत्र प्रकाश हो जाता है ।

देवदत्त—इस से भी बढ़ कर चकित करने वाली एक और बा[त] सुनी है । जब चाहे वह तीर छोड़ कर मेंह बरसा सकता है ।

शान्तिदेव—अजी यही नहीं, उस के तीर आग बरसा सकते है सांप छोड़ सकते हैं, निद्रा ला सकते हैं, और न जा[ने] क्या क्या कर सकते हैं ।



यज्ञदत्त—तो क्या ये सब करतब आज ही दिखाये जायेंगे ?

देवदत्त—आज न दिखाये जायेंगे तो कब दिखाये जायेंगे ! आज ही तो कुमारों की परीक्षा का दिन है।

यज्ञदत्त—परीक्षा लेंगे कौन ?

धर्मदेव—द्रोणाचार्य जी के सिवा और कौन ले सकता है ! अर्जुन की परीक्षा लेने में और किस की क्षमता है ! गुरु गुड़ तो चेला शकर-यह कहावत यहां चरितार्थ हो सकती है।

यज्ञदत्त—वहां और क्या क्या होगा ?

शान्तिदेव—तरह-तरह के खेल दिखाये जायेंगे, गदा-युद्ध होंगे, अस्त्रचातुरी दिखाई जायेगी।

देवदत्त—गदा-युद्ध किन में होगा ?

शान्तिदेव—कुमार भीमसेन और दुर्योधन में।

देवदत्त—दुर्योधन भीम का क्या मुकाबला करेगा ! एक ही प्रहार से बचा मुंह के बल गिरेगा।

धर्मदेव—ऐसा मत कहो। गदा चलाने में दुर्योधन भी किसी से कम नहीं। संसार में यदि कोई भीम का साम्मुख्य कर सकता है तो दुर्योधन ही कर सकता है।

(बाजों की आवाज़ आती है।)

देवदत्त—हम लोग यहीं खड़े विवाद कर रहे हैं और उधर खेल आरम्भ होने को है।

धर्मदेव—मालूम तो ऐसा ही होता है। बाजों की आवाज़ शायद रंगभूमि से ही आरही है।

देवदत्त—तो अब चलना चाहिए।

सब—हां हां, चलें बहुत भीड़ जुट गई तो फिर खड़े होने को भी स्थान न मिलेगा।

यज्ञदत्त—तुम लोग चलो, मैं भी घर से होकर आता हूँ।

धर्मदेव—फिर वही बात!

देवदत्त—अरे जाने दो इस सड़ियल आदमी को। रात-दिन काम धंदे में ही फंसा रहता है।

धर्मदेव—फंसा रहा करे, हमें क्या! हम तो न कुछ लेकर आये हैं और न कुछ लेकर जायेंगे। जो दिन आनन्द से कट जायें वे ही अच्छे।

(देवदत्त, शान्तिदेव और धर्मदेव जाते हैं)

यज्ञदत्त—इन लोगों की बुद्धि पर बलिहारी! घर खाने को एक दाना भी नहीं, और चले हैं खेल-तमाशा देखने। मेरे घर में वृद्ध माता-पिता हैं, स्त्री है, बाल बच्चे हैं। उनका पालन-पोषण करना मेरा प्रथम धर्म है। खेल तो होते ही रहते हैं। (जाता है)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—*रंगभूमिका बड़ा भारी मैदान, उसके एक कोनेमें सभामंडप, सभामंडप में उच्च सिंहासन के आसपास बैठने के आसन, पीछे कुछ ऊँचाई पर राजघराने की स्त्रियों के लिये प्रेक्षागार, रंगभूमिमें दर्शकों का भारी जमाव।*)

(सब से पहले आचार्य द्रोण, अपने पुत्र अश्वत्थामा जी के साथ प्रवेश करते हैं।)

एक दर्शक—(पास खड़े दर्शक से) भाई, ये कौन हैं ?

दूसरा दर्शक— इन्हें भी नहीं पहचानते ? ये ही तो आचार्य द्रोण हैं। इनके साथ दूसरे व्यक्ति इन्हीं के सुपुत्र अश्वत्थामा जी हैं।

तीसरा दर्शक—इतने वृद्ध हैं, तो भी इनका मुखमंडल सूर्य के समान दमक रहा है। चाल से मत्त मातंग को भी मात कर रहे हैं। मस्तक पर तिलक, मुख पर श्वेत और लम्बी श्मश्रु, गज के शुण्डदंड के समान आजानु-लम्बी भुजायें और उन पर पहने हुए भुजत्राया, हाथ में धनुष और कंधे पर शरों से भरा तूणीर—इनकी शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं।

चौथा दर्शक—इन्हें देख कर इस समय ऐसे भान हो रहा है जैसे ब्रह्म और क्षात्र तेजों ने मिलकर एक अपूर्व ज्योति उत्पन्न कर दी है। राजस और सात्विक गुणों का विचित्र सम्मिश्रण हुआ है।

(आचार्य एक ऊँचे मंच पर खड़े होते हैं।)

कुछ दर्शक—अरे भाइयो, कुछ सुनने भी दोगे ? आचार्य कुछ कहने लगे हैं।

आचार्य द्रोण—पुरवासियो, आज का दिन आप लोगों के लिये अत्यन्त शुभ दिन है। आज के दिन राजकुमार, आपके भावी शासक अपनी अस्त्र-शिक्षा समाप्त कर आपके सामने उस में परीक्षा देंगे। राजकुमारों की शिक्षा मेरे अधिकार में हुई है। इसका मुझे गर्व है। जैसी शिक्षा उन्होंने ग्रहण की है वह उन के वंश के अनुरूप है। उसी में उनकी आज परीक्षा होगी। आप लोग सावधानता से उनके करतबों को शान्तिपूर्वक देखें।

सब लोग—आचार्य द्रोण की जय! राजकुमारों की जय!

(पालकियों में बैठी हुई राजकुलाङ्गनाएँ आती हैं। उन्हें प्रेक्षागार के पास खड़ा किया जाता है। सब स्त्रियाँ पालकियों से निकल कर प्रेक्षागार में जा बैठती हैं।)

गांधारी—(आंखों पर पट्टी बांधे हुए) बहन कुन्ती, बहुत लंबी प्रतीक्षा के बाद आज का दिन आया है। आज हमारे स्तनन्धय बच्चों ने युवावस्था में पांव धरा है। सिंह-शावकों से वनराज केसरी बने हैं। आज यह देखना होगा कि इन्हों ने शत्रुदल को दलन करने और आर्तों के रक्षण की कितनी क्षमता प्राप्त की है। वर्षों के प्रतीक्षण के बाद क्षत्रियों के भाग्य में यह दिवस देखने को मिलता

चुभता रहता है, उसे कई बार निकालने का यत्न किया भी पर ज्यों ज्यों यत्न किया त्यों त्यों वह और भी धँसता गया।

कुन्ती—वह कौन सी ऐसी बात है बड़ी दीदी ?

गांधारी—कहीं यह अस्त्रशिक्षा भाई भाई में ईर्ष्या और वैमनस्य के बीज बोने वाली न हो। मैं कई दिनोंसे देख रही हूँ कि कौरवों और पांडवोंमें भ्रातृभाव के भाव विलीन होते जा रहे हैं। मेरा बेटा (लम्बी सांस लेकर) मेरा बेटा दुर्योधन तुम्हारे सब बेटों से, विशेषतः अर्जुनसे डाह करता रहता है! इस की देखा-देखी उसके दूसरे भाईयोंमें भी वैसे ही कुसंस्कार जागृत हो रहे हैं। मैं ईश्वर से सदा यही प्रार्थना करती रहती हूँ कि वे मेरे बेटों—कौरव और पांडवों को सुमार्ग पर लावें। भाई-भाई का ईर्ष्यानल सारे कुल को भस्म कर देता है बहन।

कुन्ती—ऐसा विचार मन में न लाओ बड़ी दीदी। कुमार अभी बालक हैं, बड़े होने पर सम्भल जायेंगे। घर के दो बरतन भी आपस में टकरा जाते हैं, फिर ये तो मनुष्य हैं। महाराज की देख-रेख में सम्भल जायेंगे।

गांधारी—खेद तो यह है कि इसका बहुत सा उत्तरदायित्व भी इन्हीं पर है। इनके कान सुनते हैं पर आंखें नहीं देखतीं। देखने और सुनने में बहुत बड़ा अन्तर है। बचपन से दुर्योधनका स्वभाव बहुत कुटिल रहा है। बातों बातों में ऐसा मकड़ी का सा जाल फैलाता है कि ये उस में फंस जाते हैं और दुर्योधन की बात को टाल ही नहीं सकते।

कुन्ती—मैं एक बात कहती हूँ-बुरा न मानना। भाई शकुनि का व्यवहार भी मुझे देर से खटक रहा है। वे सदा दुर्योधन के ईर्ष्यानल को भड़काते रहते हैं—बातों बातों में उस में मानों घी डालते रहते हैं।

गांधारी—इस में कोई संदेह नहीं। मैं भी यही बात देर से देख रही हूँ। एक दो बार भाई को समझाया भी है, पर वह ऐसी बेसिर-पैर की बातें करता है कि कुछ समझ में नहीं आता। अब तो ईश्वर ही कुरुवंश का रक्षक है!

कुन्ती—बड़ी दीदी, अब इन बातों को रहने दो। यह समय विषादका नहीं, हर्ष का है। लो, राज्य के मन्त्रिगण, विदुर जी तथा दूसरे राजवंशी लोग आ रहे हैं।

(राजमन्त्री, श्री व्यासजी, विदुरजी, भीष्मपितामह, कृपाचार्य और दूसरे राजवंशी लोग आकर अपने अपने आसनों पर बैठ जाते हैं। दर्शकों में कोलाहल होने लगता है।)

कुछ दर्शक—हटो हटो, रास्ता छोड़ो।

कुछ और दर्शक—अरे अंधे हो! देखते नहीं किन की सवारी आ रही है?

कुछ दर्शक—तुम लोग क्यों गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हो! हम सब कुछ देख रहे हैं। महाराज ही तो आरहे हैं।

(कुछ सिपाही आते हैं। उन के पीछे एक हाथी आता है। उस पर महाराज धृतराष्ट्र सोने के हौदे में बैठे हैं, उनके पीछे हुकुम-दार को थामे एक मनुष्य बैठा है, दूसरा उन पर चमर डुला रहा है। उनके आते ही नरसिंघे बजने लगते हैं। चारों ओर शोर मचने लगता है।)

सब लोग—(एक स्वर से) कुरुकुलावतंस महाराज धृतराष्ट्र की जय! (कुछ समय तक 'जय' 'जय' के नारे सुनाई देते हैं)

धृतराष्ट्र—(विदुर से) विदुर जी, आचार्य से विनय कीजिए कि परीक्षा-कार्य आरम्भ करें।

विदुर—बहुत अच्छा। (द्रोण से) आचार्य, महाराज की आज्ञा है कि कुमारों को बुला कर कार्यक्रम शुरू हो।

द्रोण—बहुत अच्छा-

(आचार्य बाजेवालों को संकेत करते हैं। बाजे बजने लगते हैं। पहले युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पांचों पांडव और फिर दुर्योधन और उस के सब भाई रंगभूमि में आते हैं। सब कुमारों की उंगलियों पर अंगुलित्र हैं। उनकी कमरों में रत्न-जटित सुवर्ण के पट्टे बंधे हैं। उनकी पीठों पर तरकस और हाथों में धनुष हैं।)

एक दर्शक—मनुष्यकुमार हैं कि देवपुत्र हैं!

दूसरा दर्शक—कुमार युधिष्ठिर का भाल कैसा चमक रहा है! यहां पर साफ लिखा मालूम होता है कि यही हमारे महाराज होंगे। इन में सम्राट बनने के सब लक्षण दिखाई देते हैं।

तीसरा दर्शक—तब न बनेंगे जब दुर्योधन बनने देंगे!

चौथा दर्शक—दुर्योधन की क्या मजाल कि बाधा डाले! भीम और अर्जुन के रहते दुर्योधन की दाल न गलेगी।

पांचवां दर्शक—अरे मित्र, ज़रा भीम की ओर भी देखो। कैसी मत्त मातंग की सी चाल है!

छठा दर्शक—अजी रहने दो मत्तमातंगी चाल। देखो वनराज केसरी दुर्योधन आ रहा है।

सातवां दर्शक—अर्जुन को तो तुम लोगों ने देखा ही नहीं। धनुष तो उसी के हाथ में सोहता है, मानों उस पर उसी का स्वत्व है।

एक और दर्शक—अरे भाइयो, छोड़ो इस वाद-विवाद को। तुम्हारे मत्तमातंग और वनराजकेसरी, धनुष और गदा अभी तुम्हारे सामने आ जायेंगी। व्यर्थ झगड़ा क्यों करते हो?

एक दर्शक—क्यों न झगड़ा करें—हम सब लोग पुण्यात्मा पांडव-कुमारों की जय चाहते हैं। धर्म उनकी ओर है—यतो धर्मस्ततो जयः।

दूसरा [illegible] ...रे कहने से दुर्योधन और उसके भाइयों [illegible]ा बनता बिगड़ता है! अभी मैदान में पानी

पानी होगा और दूध का दूध ! सौ के साथ पाँचों का क्या मुकाबला !

(दोनों दलों के लोग आपस में लड़ने लगते हैं । रक्षापुरुष आकर उन्हें शान्त करते हैं ।)

द्रोणाचार्य—(दर्शकों के प्रति) सब कुमार आपके सामने परीक्षा देने को उपस्थित हैं । आपलोग ध्यान से उनके करतब देखें ।

(लोगों में फिर शोर होने लगता है ।)

एक दर्शक—ओ ये लाल दुपट्टे वाले, भाई, तनिक बैठ जाओ, ज़रा हमें भी कुछ देखने दो ।

वह दर्शक—देखने को इतने उत्सुक थे तो पहले क्यों नहीं आ गये ? मैं सूर्योदय से पहले यहां खड़ा हूँ । मैं न बैठूँगा ।

(दूसरी ओर फिर शोर)

कुछ दर्शक—बैठ जाइये, बैठ जाइये, आगे खड़े हुए लोग यदि बैठ जायँ तो सब लोग आराम से देख सकेंगे ।

(रक्षापुरुष आकर लोगों को शान्त करते हैं और खड़े हुए दर्शकों को बैठाते हैं ।)

द्रोणाचार्य—पहले कुमार युधिष्ठिर आपके सामने भाला चलाने चातुरी दिखायेंगे ।

(अश्वारूढ़ युधिष्ठिर मैदान में आते हैं और घोड़ा दौड़ा कर भूमि में गड़ी हुई एक कीली को भाले की नोक से उखाड़ ले जाते हैं ।)

सब लोग—(एक स्वर से) वाह वाह ! कैसे भाला अपने निशाने पर ठीक बैठा !

एक दर्शक—इसी को कहते हैं भाला चलाना !

दूसरा ,, —आचार्य के सिखाये हैं भाई।

तीसरा ,, —अभी आगे देखना और क्या क्या होता है।

(युधिष्ठिर तलवार से ऊपर से गिरती हुई नारंगी के अधर में ही दो टुकड़े कर देते हैं।)

(जनता में करतलध्वनि, युधिष्ठिर का प्रस्थान।)

(एक ओर से भीम और दूसरी ओर से दुर्योधन गदा लिये आते हैं और गदायुद्ध करते हैं।)

भीम —(ललकार कर) दुर्योधन, हम दोनों में से किसको गदा चलाना अच्छा आता है—इसका निर्णय आज हो जायगा।

दुर्योधन—हां, अवश्य होजायगा और सदा के लिए हो जायगा। अभी एक ही प्रहार से तुम्हारा काम तमाम किये देता हूँ।

भीम—आज तुम्हारे ही हृदयरक्त से तुम्हारा ईर्ष्यानल शान्त करता हूं।

(दोनों ओर से प्रहार करते हैं—प्रहारों से उनके कंचुकों से आग की चिनगारियां निकलती हैं। एक एक प्रहार पर लोग 'वाह वाह' के नारे लगाते हैं और करतल ध्वनि करते हैं।)

एक दर्शक—ऐसा मालूम होता है कि दो मातंग भिड़ रहे हैं।

दूसरा ,,—अरे मातंग क्या, मुझे तो दो पहाड़ टकराते दिखाई देते हैं।

तीसरा दर्शक—दोनों की चिनगारियों के समान जलती आंखों को देख कर डरसा लग रहा है। ये परीक्षा दे रहे हैं या शत्रुवत् युद्ध कर रहे हैं ?

(भीम के प्रहार करने पर भीम के पक्षपाती दर्शक 'वाह वाह' की ध्वनि करते हैं और दुर्योधन के प्रहार करने पर उसके पक्षपाती वैसे भी नारे लगाते हैं)

चौथा दर्शक—अरे भाई, और बातों को छोड़ो। विधाता ने इन दोनों का एक ही जोड़ा बनाया है। कोई किसी से कम नहीं दीखता।

पांचवां दर्शक—मैंने कहा न था कि भीम का मुकाबला दुर्योधन ही कर सकता है ?

(भीम और दुर्योधन दोनों आवेश के साथ एक दूसरे की जान लेने पर उतर आते हैं)

द्रोणाचार्य—(उच्च स्वर से) अरे भीम बेटा, अरे कुमार दुर्योधन, युद्ध मत करो, केवल गदाप्रहारों से चातुरी दिखाओ। यह परीक्षा काल है, युद्धकाल नहीं।

(फिर भी दोनों नहीं रुकते)

धृतराष्ट्र—(विदुर से) विदुर जी, लोगों में इतना शोर क्यों हो रहा है ? कृपया हरेक बात मुझे बताते जाओ।

विदुर—महाराज, भीम और दुर्योधन गदायुद्ध में चातुरी दिखा रहे हैं।

गान्धारी—(कुन्ती से) बहन, इस समय लोगों में अपूर्व जोश क्यों

हो रहा है ? आँखों पर पट्टी रहने के कारण मैं स्वयं नहीं देख सकती, तनिक यहां का हाल मुझे भी सुनाती जाओ।

कुन्ती—बड़ी दीदी, आज का दृश्य देखने योग्य है, इसका ठीक ठीक वर्णन जिह्वा से नहीं हो सकता । पर मैं कैसे कहूँ कि आप आँख की पट्टी खोलदें ! पति के नयनविहीन होने पर अपनी आंखों पर भी सदा के लिये पट्टी बांधकर आप ने नारीत्व को बहुत ऊँचा पद दे दिया है। पतिव्रताधर्म को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है। बहन, मैं सब घटनाओं का वर्णन अवश्य करती जाऊंगी। इस समय भीम और दुर्योधन गदायुद्ध कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र—(विदुर से) विदुर जी, आचार्य से कहिये कि इनका युद्ध बंद करदें. मैं दोनों की प्रकृति को जानता हूँ। गदा-चातुरी दिखाते-दिखाते वे वास्तविक युद्ध करने लग जायेंगे।

(विदुर जी आचार्य को संकेत करते हैं।)

द्रोणाचार्य—(कृपाचार्य से) कृप ! आप ही जाकर इनका युद्ध बंद करदें। केवल कहने से यह न मानेंगे।

(कृपाचार्य जाकर उनके बीच में खड़े हो जाते हैं और युद्ध बंद कर देते हैं। भीम और दुर्योधन क्रोध से एक दूसरे की ओर देखते हैं।

दुर्योधन—फिर सही।

भीम—वह 'फिर' भी शीघ्र आजायेगा।

(भीम के पक्षपाती 'भीमसेन की जय' और दुर्योधन के
य' के नारे लगाते हैं
बाजे बजना बंद करते हैं)

आचार्य—(रंगभूमि के द्वार की ओर देख कर) दर्शकगण, अब पाण्डु-कुमार अर्जुन आवेगा। आप अर्जुन की धनुर्विद्या में चातुरी देख कर चकित हो जायेंगे। कुमार अर्जुन पर मुझे गर्व है। यह मुझे अश्वत्थामा से भी बढ़ कर प्यारा है।

(अर्जुन का प्रवेश। स्वर्ण देह पर सुशोभित कवच, हाथ की उंगलियों पर गोहचर्म के अंगुलित्र, कांधे पर तीरों से भरा तरकश और हाथ में धनुष है।)

(उसके आने पर दर्शक करतलध्वनि करते हैं। शंख और नरसिंघे बजते हैं। लोग उठ उठ कर अर्जुन को देखते हैं और 'कुमार अर्जुन की जय' के नारे लगाते हैं।)

धृतराष्ट्र—(विदुर से) विदुर जी, दर्शक-मंडली में आकाश को भी विदीर्ण करने वाला, कोलाहल क्यों हो रहा है? ऐसा प्रतीत होता है मानों अगाधतल समुद्र उमड़ उठा है।

विदुर—राजन्, कुन्तीपुत्र, पाण्डुनन्दन अर्जुन ने रंगभूमि में प्रवेश किया है।

धृतराष्ट्र—महामना विदुर जी, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन मनुष्य नहीं देवपुत्र हैं, कुन्तीरूपी यज्ञकाष्ठ से मानों तीन अग्नियां उत्पन्न हुई हैं।

(शकुनि का प्रवेश)

शकुनि—महाराज, इन अग्नियों में घृत की आहुतियां डालते जाओगे तो वे और प्रचंड होकर कौरववन को भस्म कर देंगी।

शकुनि—मेरे कहने का यह आशय है महाराज, कि पांडवों का भरण-पोषण करना सांपों को दूध पिलाना है।

गान्धारी—(कुन्ती से) यह कैसा कोलाहल है बहन ?

कुन्ती—आप का सेवक अर्जुन रंगभूमि में आया है।

गान्धारी—धन्य हो बहन, जिस की कोख ने अर्जुन जैसे वीरात्मा को जन्म दिया है। पर एक बात मैं कहती हूँ, क्रोध न करना। न मालूम अर्जुन का नाम सुनते ही मेरी नाड़ी-नाड़ी में क्यों रक्तसंचार हो जाता है। लोहू उबल उठता है। ऐसा भान होता है कि वह मेरा वैरी है—जन्म-जन्मांतरों का वैरी है, मेरे वंश का ध्वंसक है।

कुन्ती—छोड़ो यह बातें बड़ी दीदी। शायद इन बालकों के परस्पर लड़ाई-झगड़ों को सुन सुन कर आपके ऐसे विचार होगये हैं। जैसे मैं आपकी दासी हूँ वैसे मेरे पुत्र भी आप के दास हैं।

(अर्जुन धनुष पर तीर चढ़ा कर उसे छोड़ता है। आकाश से अग्नि बरसने लगती है, लोग भय से भागने लगते हैं)

कुछ लोग—अरे बचाओ बचाओ ! यह अग्नि हमें अभी भस्म कर देगी।

कुछ और लोग—(भागते भागते) अब प्रलय में कुछ देर नहीं। यह अग्नि समस्त संसार को भस्म कर देगी।

पहला दर्शक—(रोता हुआ) यदि मेरे वस्त्र जल गये तो पहनूंगा क्या ?

दूसरा [illegible] ! तुझे वस्त्रों की पड़ी है। वस्त्रोंकी [illegible] रहेगी। वस्त्रों के साथ तुम्हारा शरीर

आचार्य—(उच्च स्वर में) अर्जुन बेटा, आग्नेय बाण का संहार करो। लोग घबरा रहे हैं।

(अर्जुन एक दूसरा बाण छोड़ता है। आकाश से जलवर्षा होने लगती है। सब लोग प्रसन्न होते हैं)

एक मनुष्य—(दूसरे से) लो भाई, देवराज इन्द्र ने हमें बचा लिया, नहीं तो मृत्युकुण्ड के किनारे ही खड़े थे।

दूसरा मनुष्य—तुम भी निरे मूर्खराज हो ! तुम्हें अब भी नहीं पता लगा ? ये कुमार अर्जुन की धनुर्विद्या के करतब थे।

तीसरा मनुष्य—यह भी कोई खेल है ! यदि हम जल जाते तो ?

(अर्जुन एक और तीर छोड़ता है, सर्वत्र अन्धकार छा जाता है।)

कुछ दर्शक—आज तो पता ही नहीं लगा और संध्या हो गई है !

कुछ और—मन एकत्र लगा हो तो समय की गति तीव्र हो जाती है। अभी चलना ठीक होगा, आठ कोस का मार्ग रातोरात तय करना होगा।

(अर्जुन एक और तीर चलाता है, पहले से भी अधिक प्रकाश हो जाता है)

दर्शक—(आपस में) बात की बात में अंधकार छू-मंतर हो गया है। दोपहर तो कभकी ढल चुकी है, पर प्रतीत ऐसा होता है कि सूर्य अपने पूर्ण यौवन पर है।

एक मनुष्य—भैया, न तब संध्या थी और न अब दोपहर है। समय वही है जो पहले था। यह अन्धेरा और उजाला भी धनुर्विद्या के प्रताप से हैं।

र्जुन तीरों को छोड़कर कभी लोगों को सुलाता है फिर जगाता है, कभी सर्प निकालता है पश्चात् सर्पभक्षी पक्षी उत्पन्न कर उनका संहार करता है। प्रत्येक घटना के बाद 'वीर अर्जुन की जय' 'पांडुनन्दन अर्जुन की जय' 'धनुर्धर अर्जुन की जय' के नारों से आकाश गूंज उठता है)

(कुछ रक्षापुरुष रंगभूमि में एक गाय लाते हैं। उसके दोनों सींगों पर दो नारंगियां बांधते हैं, फिर गाय को चक्कर में दौड़ाते हैं। अर्जुन तीर लेकर खड़ा होता है। दर्शकों में शोर मचता है।)

कुछ लोग—अर्जुन, अर्जुन, ऐसा न करो। तीर गाय को लग गया तो इस बेचारी के प्राण निकल जायेंगे।

कुछ और लोग—और तुम्हें गोहत्या का पाप लगेगा।

कुछ लोग—हम ऐसा न करने देंगे। जानें दे देंगे पर गोहत्या न होने देंगे।

कुछ और लोग—गौ हमारी माता है-माता से भी पूज्यतर है। जीते जी हम इसकी हत्या न होने देंगे।

द्रोणाचार्य—(उच्च स्वर में) दर्शकगण, क्या आप लोग समझते हैं कि अर्जुन गोवध करने को उद्यत हुआ है? तुम्हारा यह भ्रम है। जिस वंश ने अर्जुन को जन्म दिया है-उसके पुरखाओं ने गौ की रक्षा के लिए प्राण न्योछावर कर दिये हैं। अर्जुन उन्हीं का वंशधर है। आप

आचार्य—(उच्च स्वर में) अर्जुन बेटा, आग्नेय माया का संहार करो। लोग घबरा रहे हैं।

(अर्जुन एक दूसरा बाण छोड़ता है। आकाश से जलवर्षा होने लगती है। सब लोग प्रसन्न होते हैं)

एक मनुष्य—(दूसरे से) लो भाई, देवराज इन्द्र ने हमें बचा लिया, नहीं तो मृत्युकुण्ड के किनारे ही खड़े थे।

दूसरा मनुष्य—तुम भी निरे मूर्खराज हो ! तुम्हें अब भी नहीं पता लगा ? ये कुमार अर्जुन की धनुर्विद्या के करतब थे।

तीसरा मनुष्य—यह भी कोई खेल है ! यदि हम जल जाते तो ?

(अर्जुन एक और तीर छोड़ता है, सर्वत्र अन्धकार छा जाता है।)

कुछ दर्शक—आज तो पता ही नहीं लगा और संध्या हो गई है !

कुछ और—मन एकत्र लगा हो तो समय की गति तीव्र हो जाती है। अभी चलना ठीक होगा, आठ कोस का मार्ग रातोरात तय करना होगा।

(अर्जुन एक और तीर चलाता है, पहले से भी अधिक प्रकाश हो जाता है)

दर्शक—(आपस में) बात की बात में अंधकार छू-मंतर हो गया है। दोपहर तो कबकी ढल चुकी है, पर प्रतीत ऐसा होता है कि सूर्य अपने पूर्ण यौवन पर है।

एक मनुष्य—भैया, न तब संध्या थी और न अब दोपहर है। समय वही है जो पहले था। यह अन्धेरा और उजाला भी धनुर्विद्या के प्रताप से हैं।

दे सकते हो। यह विद्या न अर्जुन की संपत्ति है और न किसी और की, विद्या अभ्यासी की होती है।

(कर्ण एक एक करके वे सब काम कर दिखाता है, जो अर्जुन ने किये थे। लोगों में बहुत जोश पैदा हो जाता है। उसके प्रत्येक काम पर करतलध्वनि करते हैं।

दुर्योधन—(उठकर और आवेश से) जीते रहो कर्ण, आज तुम ने निराशासमुद्र में डूबते हुए मुझे हाथ दे कर निकाला है। (उन के पास जाकर) कर्ण, आज तुम मेरे अभिन्नहृदय मित्र हो। मैं अपने आप ही जिस अग्नि में जल रहा था—तू ने आज उसे शान्त किया है। हम दोनों का ध्येय एक है—अर्जुनविध्वंस। दो होते हुए भी हम आज से एक हुए।

कर्ण—(दुर्योधन के कन्धे पर हाथ रखकर) कुरुकुमार, आपने मुझ पर जो विश्वास किया है, वह आजन्म मेरे पास धरोहर रहेगा। कर्ण प्राण दे देगा, पर विश्वासघात न करेगा। (दुर्योधन कर्ण के हाथ पकड़ कर उसे गले लगाता है) (अर्जुन से) अर्जुन, तुम्हारी कीर्ति मुझे यहां लाई है। मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध, करवालयुद्ध या बाण-युद्ध के लिये आया हूँ। इन में से जैसा युद्ध चाहो स्वीकार करलो, मैं तैयार हूँ।

अर्जुन—कर्ण, जो लोग बिना बुलाये आते हैं और इस प्रकार की गर्वभरी बातें करते हैं वे कुत्सित लोग होते हैं।

कर्ण—अर्जुन, यह रंगभूमि और आज का उत्सव सर्वसाधारण के लिए है। इस पर किसी एक व्यक्ति का स्वत्व नहीं है।

शान्त होकर अर्जुन की यह चातुरी देखें।
देखो ही आप चकित हो जाएंगे।

कुछ लोग—(ऊँचे स्वर से) अब तो और बात बढ़ी। आचार्य के वचनों पर भी विश्वास नहीं?

(सर्वत्र शान्ति हो जाती है। लक्ष्य चारों ओर से चक्कर में आ जाता है। अर्जुन तीर फेंक कर ऐसी भालियों को एक दम भग कर देता है। लोग तालियाँ बजाते हैं।)

लोग—धन्य हो अर्जुन, धन्य हो! यह वीरता की पराकाष्ठा है।

(एक कोने में कुछ हलचल होती है। 'भागो हटो, हटो, आगे बढ़ो' की आवाज़ें आती हैं। और वीरता युक्त कर्ण रंगभूमि में आता है। उस के हाथ में धनुष, कमर में तलवार कानों में जगमगाते कुंडल और कवच है।)

कुछ लोग—यह कौन है? (विस्मित होकर) मनुष्य है या पर्वतराज सुमेरु चला आ रहा है।

एक दर्शक—इसके मुखकी कान्ति अमित सुवर्ण के समान है।

दूसरा „—इस में बल इतना है कि चलने से धरती कांप रही है।

तीसरा „—यह कौन है?

कुछ लोग—अरे भाई, सुनो। यह कुछ कह रहा है।

कर्ण—(द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम कर) अर्जुन, तूने बाण चलाने के जो करतब यहां दिखाये हैं मैं उन सब को दिखाऊँगा—उन से भी अधिक चमत्कारी करतब दिखा कर तेरे गर्व को चूर्ण करूंगा।

द्रोण—कर्ण, तुम भी अपनी अस्त्रचालनचातुरी का परिचय

वंश में उत्पन्न हुआ है। इसका युद्ध उसी से होगा जो इसी की तरह ही उच्चवंशज हो। इसलिए तुम भी अपने माता पिता का नाम बताओ।

(कृपाचार्य का वचन सुनते ही कर्ण के मुख का वर्ण उड़ जाता है, उसके हाथ से तलवार गिरने लगती है।)

दुर्योधन—(आगे बढ़ कर) अश्वत्थामा, सच्चे योद्धा प्रतिपक्षी के कुल की परवाह नहीं करते। उन्हें मृत्यु का कभी भय नहीं होता। अर्जुन यदि सच्चा और वीर क्षत्रिय है तो उसे कर्ण से युद्ध करने में हिचकिचाना न चाहिए।

कृपाचार्य—कर्ण को अपने माता पिता का नाम और जाति बताने में संकोच क्यों है? वह अवश्य किसी नीच जाति का होगा। मैं अर्जुन को नीचकुलोत्पन्न से युद्ध न करने दूंगा।

दुर्योधन—यदि अर्जुन को किसी राजा से ही युद्ध करना अभिप्रेत है तो मैं अभी कर्ण को अङ्गदेश का राज्य देता हूँ।

(एक मुकुट मंगवा कर कर्ण के सिर पर रखता है और माथे पर तिलक लगाता है। चारों ओर से 'अंगराज कर्ण की जय' के नारे होते हैं।)

(सहसा अधिरथ का प्रवेश। वह बहुत घबराया हुआ है। उसका शरीर पसीने से तर है। भागता भागता कर्ण के पास जाता है। कर्ण उसके चरण छूता है।)

वीर बल को श्रेष्ठ मानते हैं। वे हर तरह और हर प्रकार ललकार का उत्तर ललकार से देने को तयार रहते हैं। दुर्बलों की तरह इन आक्षेप की बातों का क्या प्रयोजन! बाणों से उत्तर दो। यदि भुजाओं में बल हो तो तलवार लाओ और रंग-भूमि में उतरो।

अर्जुन—यदि तुम्हें अपनी जान भारभूत है, तो उतरो मैदान में, मैं अभी तलवार के एक ही हाथ से तुम्हें यम-सदन भेजता हूँ।

कर्ण—(तलवार लेकर) मैं तैयार खड़ा हूँ।

(स्त्रियों के बैठकागार में कोलाहल)

लोग—यहां शोर कैसा है?

कुछ लोग—(उधर से आते हुए) कुन्ती माता बेहोश होगई थी, पर अब अच्छी हैं।

एक पुरुष—आखिर स्त्री ही तो हैं। स्त्रियों का हृदय ऐसे कठोर आघातों के दृश्य को नहीं सहन कर सकता। उन्हें घर क्यों नहीं ले गए?

दूसरा पुरुष—तू भी कैसी बेतुकी हांक रहा है! माता कुन्ती शूर-पत्नी और शूर-माता हैं। इनका जन्म वीर वंश में हुआ है। ऐसे दृश्य उन्हें कैसे भयभीत कर सकते हैं! कुछ बीमारी-सिमारी होगी जिससे हृदय शिथिल होगया होगा।

कृपाचार्य—(उन दोनों के बीच में आकर, कर्ण से) वीरवर, तुम धन्य हो जो ऐसी वीरता की बातें कर रहे हो। पर तुम जानते हो

में उत्पन्न हुआ है। इसका युद्ध उसी से होगा जो इसी की तरह ही उच्चवंशज हो। इसलिए तुम भी अपने माता पिता का नाम बताओ।

(कृपाचार्य का वचन सुनते ही कर्ण के मुख का वर्ण उड़ जाता है, उसके हाथ से तलवार गिरने लगती है।)

दुर्योधन—(आगे बढ़ कर) अश्वत्थामा, सच्चे योद्धा प्रतिपक्षी के कुल की परवाह नहीं करते। उन्हें मृत्यु का कभी भय नहीं होता। अर्जुन यदि सच्चा और वीर क्षत्रिय है तो उसे कर्ण से युद्ध करने में हिचकिचाना न चाहिए।

कृपाचार्य—कर्ण को अपने माता पिता का नाम और जाति बताने में संकोच क्यों है ? वह अवश्य किसी नीच जाति का होगा। मैं अर्जुन को नीचकुलोत्पन्न से युद्ध न करने दूंगा।

दुर्योधन—यदि अर्जुन को किसी राजा से ही युद्ध करना अभिप्रेत है तो मैं अभी कर्ण को अङ्गदेश का राज्य देता हूँ।

(एक मुकुट मंगवा कर कर्ण के सिर पर रखता है और माथे पर तिलक लगाता है। चारों ओर से 'अंगराज कर्ण की जय' के नारे होते हैं।)

(सहसा अधिरथ का प्रवेश। वह बहुत घबराया हुआ है। उसका शरीर पसीने से तर है। भागता भागता कर्ण के पास आता है। कर्ण उसके चरण छूता है।)

वीर बल को श्रेष्ठ मानते हैं। वे हर जगह और हर समय तलवार का उत्तर तलवार से देने को तैयार रहते हैं। दुर्योधन की तरह इन आक्षेप की बातों का क्या प्रयोजन! बातों से उत्तर दो। यदि भुजाओं में बल हो तो तलवार हाथों और रंग-भूमि में उतरो।

अर्जुन—यदि तुम्हें अपनी जान भारभूत है, तो उतरो अखाड़े में, मैं अभी तलवार के एक ही हाथ से तुम्हें यम-सदन भेजता हूँ।

कर्ण—(तलवार लेकर) मैं तैयार खड़ा हूँ।

(स्त्रियों के बैठकखाने में कोलाहल)

लोग—यहाँ शोर कैसा है?

कुछ लोग—(उधर से आते हुए) कुन्ती माता बेहोश होगई थी, पर अब अच्छी हैं।

एक पुरुष—आखिर स्त्री ही तो हैं। स्त्रियों का हृदय ऐसे कठोर आघातों के हृदय को नहीं सहन कर सकता। उन्हें घर क्यों नहीं ले गए?

दूसरा पुरुष—तू भी कैसी बेतुकी हांक रहा है! माता कुन्ती शूर-पत्नी और शूर-माता हैं। इनका जन्म वीर वंश में हुआ है। ऐसे दृश्य उन्हें कैसे भयभीत कर सकते हैं! कुछ बीमारी-सिमारी होगी जिससे हृदय शिथिल होगया होगा।

कृपाचार्य—(उन दोनों के बीच में आकर, कर्ण से) वीरवर, तुम धन्य हो जो ऐसी वीरता की बातें कर रहे हो। पर तुम जानते हो अर्जुन क्षत्रियवंशी है, कुरुकुल जैसे उच्च

वंश में उत्पन्न हुआ है। इसका युद्ध उसी से होगा जो इसी की तरह ही उच्चवंशज हो। इसलिए तुम भी अपने माता पिता का नाम बताओ।

(कृपाचार्य का वचन सुनते ही कर्ण के मुख का वर्ण उड़ जाता है, उसके हाथ से तलवार गिरने लगती है।)

दुर्योधन—(आगे बढ़ कर) अश्वत्थामा, सच्चे योद्धा प्रतिपक्षी के कुल की परवाह नहीं करते। उन्हें मृत्यु का कभी भय नहीं होता। अर्जुन यदि सच्चा और वीर क्षत्रिय है तो उसे कर्ण से युद्ध करने में हिचकिचाना न चाहिए।

कृपाचार्य—कर्ण को अपने माता पिता का नाम और जाति बताने में संकोच क्यों है? वह अवश्य किसी नीच जाति का होगा। मैं अर्जुन को नीचकुलोत्पन्न से युद्ध न करने दूंगा।

दुर्योधन—यदि अर्जुन को किसी राजा से ही युद्ध करना अभिप्रेत है तो मैं अभी कर्ण को अङ्गदेश का राज्य देता हूँ।

(एक मुकुट मंगवा कर कर्ण के सिर पर रखता है और माथे पर तिलक लगाता है। चारों ओर से 'अंगराज कर्ण की जय' के नारे होते हैं।)

(सहसा अधिरथ का प्रवेश। वह बहुत घबराया हुआ है। उसका शरीर पसीने से तर है। भागता भागता कर्ण के पास जाता है।)

अधिरथ—बेटा, तुम यहां हो ? मैंने तो इस वन का कोना-कोना छान डाला है, जब तुम्हें कहीं न पाया तो भागता यहां आया हूं। अब जी में जी आया है। तुम्हारी माता की न जाने क्या दशा हो रही होगी। बेचारी के प्राण निकल रहे होंगे। चलो बेटा, घर चलें।

एक दर्शक—अरे ! यह तो सारथी अधिरथ है।

दूसरा—वही तो। इस की स्त्री का नाम राधा है।

तीसरा—तब तो यह कर्ण सूतपुत्र है।

चौथा—कर्ण सूतपुत्र—

पांचवां—कर्ण सारथीपुत्र...

छठा—कर्ण सूतपुत्र—

(कुछ ही देर में कर्ण के सूतपुत्र होने का समाचार रंगभूमि में सर्वत्र फैल जाता है और सब के मुख से दबे स्वर

मैं—कर्ण सूतपुत्र, कर्ण सूतपुत्र—

यह आवाज़ें निकलती हैं।)

भीम—(व्यंग की हंसी हंसता हुआ) आखिर भांडा फूट ही गया। (कर्ण से) सूतपुत्र, तुम अर्जुन के हाथ से मरने के भी योग्य नहीं हो। तुम्हारा कुलोचित काम है रथ हांकना, घोड़ों की रासें पकड़ना। उसी काम को करो। जैसे कुत्ता यज्ञहवि का आस्वादन नहीं कर सकता वैसे ही तुम अङ्गराज्य का उपभोग करने के अयोग्य हो।

कर्ण—भीम, लोकाचार से डर रहा हूँ, नहीं तो अभी इस तलवार से तेरी गरदन उड़ा देता।

भीम—और मैं तेरा इसलिए वध नहीं करता कि शूद्र को छूने से प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

दुर्योधन—भीम, तुम्हारे मुख में ऐसे कायरों के से वचन नहीं शोभा देते, इन बातों से तुम भाई की जान बचाना चाहते हो। क्षत्रियों में सदा बल का ही आदर होता चला आया है। शूरों और नदियों के उद्गम स्थान को कोई नहीं पूछता। दानवकुल को नष्ट करने वाले वज्र का जन्म दधीचि की हड्डियों से हुआ था। कुमार कार्तिकेय के माता-पिता का कोई पता नहीं। उसे कोई अग्नि का, कोई कृत्तिका का और कोई गंगा का पुत्र बताते हैं। विश्वामित्र जन्म के क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणों में उत्तम माने जाते हैं और महर्षि पद पर पहुंच गये हैं। कर्ण की ओर तनिक देखो। ऐसा तेजस्वी मुखमंडल, जन्मजात सुवर्ण के कुण्डल और कवच कभी किसी नीच जाति के जाये के हो सकते हैं! शृगाली शृगाल को ही उत्पन्न करेगी और सिंही सिंह को। सिंह शृगाली का आत्मज नहीं हो सकता। कर्ण किसी वंश का भी हो, मेरा हार्दिक मित्र है। हम दोनों एक हैं-अभिन्न हैं। अङ्गराज्य क्या, समस्त भूमंडल का राज्य भी इसके चरणों में अर्पण कर सकता हूँ।

(दुर्योधन की बातें सुनकर दर्शकों में कोलाहल होने लगता है)

एक [illegible] तो पते की कही है। (*गुणानर्चन्ति जन्तूनां* [illegible] *केवलो क्वचित्*) आदर गुणों का होता है,

मेरे पसीने की जगह लोहू बहाने को उद्यत रहते हैं सब के सब गुरुमेवारन, धर्मात्मा और सत्यवादी हैं। उन से बुराई करूं ? नहीं नहीं, ऐसा नहीं होगा—कदापि न होगा। ऐसा विचार मन में लाना ही कुंभीपाक नरक में गिरना है। (फिर कुछ सोच कर) देखा जाय तो वे एक तरह से मेरे शत्रु हैं। मेरे पुत्रों के शत्रु हुए तो मेरे ही हुए। मेरे पुत्रों के मुख से रोटी का कौर छीनने वाले क्या मेरे शत्रु नहीं ? मेरे आत्मजों को बपौती—उनके न्यायसंगत राज्याधिकार से—वंचित करने वाले क्या मेरे शत्रु नहीं हैं ? कणिक ने सत्य कहा था—नीतिज्ञ शत्रु पहले विश्वास का जाल फैलाता है, फिर मकड़े के जालमें फंसी हुई मक्खी की तरह विश्वस्त का वध करता है। अब समझा। इसी लिए वे मुझ से इतना प्रेम करते हैं, सेवाभाव दिखाते हैं। शायद उनके ये भाव भी कृष्ण की सिखाई नीति का फल हैं। (कुछ ठहर कर) बात किसी ठिकाने नहीं ठहरती। मन में भ्रम हो रहा है। एक तर्क की नींव पर विचारभवन खड़ा करता हूं कि तत्काल दूसरा तर्क उसे गिरा कर धरातलशायी कर देता है। (चिन्तित हो कर) ठीक बात तो यह है कि उन्होंने मेरे साथ कभी कूटनीति का प्रयोग नहीं किया। शत्रु अपना शत्रुभाव चाहे कितना छिपाता रहे, पर कभी न कभी वह ज़ाहिर हो ही जाता है—भांडा फूट जाता है। पर ऐसा अब तक कभी नहीं हुआ। दूसरे, नीतिकुशल भाई विदुर, भीष्म, आचार्य और सब लोग पांडवों को [illegible]

उन्हीं की प्रशंसा करते हैं। आखिर उन में कोई गुण है—सभी न ! (कुछ ठहर कर) क्या करूं मन की विचारधारायें प्रतिकूल दिशाओं में बह रही हैं। कुछ निर्णय नहीं कर पाता। वे शत्रु नहीं हो सकते (विचार कर)। पर मित्र भी नहीं हो सकते।

(दुर्योधन, कर्ण और शकुनि का प्रवेश।)

दुर्योधन—प्रणाम पिता जी।

कर्ण—महाराज प्रणाम।

शकुनि—प्रणाम, जीजा जी।

धृतराष्ट्र—कौन ? दुर्योधन ! तुम्हारे साथ और कौन हैं ?

दुर्योधन —अंगराज कर्ण और मामा शकुनि।

धृतराष्ट्र—अच्छा, अच्छा—तुम्हारे ही साथी हैं। तुम सब लोग सुखी रहो।

दुर्योधन—(कर्ण से, कानों में) तुम कहो।

कर्ण—(हाथ के इशारे से शकुनि से) तुम कहो।

शकुनि—(धीरे से) दुर्योधन कहे, वही तो हमें यहां लाया है।

धृतराष्ट्र—क्या बात है बेटा ? चुप क्यों हो ? कहो जो कहना चाहते हो।

दुर्योधन—पिता जी, हम लोग आप से एक बात कहने आये हैं। हमें आज कल पुरवासियों की ओर से कुछ अमंगल की आशंका है।

धृतराष्ट्र—पुरवासियों से अमंगल की आशंका ? नहीं बेटा, तुम्हें भ्रम हुआ होगा।

दुर्योधन—बात यह है पिता जी, कि वे लोग ज्येष्ठ पांडव-कुमार युधिष्ठिर को राज्यपद देना चाहते हैं। भीष्म और चाचा विदुर भी उन्हीं का पक्ष ले रहे हैं।

धृतराष्ट्र—ठीक तो है। राज्य उन्हीं का है और उन्हीं को मिलना चाहिये।

दुर्योधन—ऐसा कभी न होगा। यदि यह हुआ पिता जी, तो हमारे साथ घोर अनर्थ होगा। कुरुवंश में सब से बड़े होने से राज्य के अधिकारी आप थे। पर आप चक्षुहीन होनेके कारण राज काज न चला सकते थे, इसलिये चाचा पांडु राजा बने। पर इससे राज्य उनका हो नहीं गया। वे तो केवल आपके प्रतिनिधिरूप से राज-काज चलाते रहे। राज्य के अधिकारी राजा के पुत्र होते हैं न कि प्रतिनिधि के पुत्र। यदि इस समय राज्यपद पांडवों को मिल गया तो उनके बाद उनके वंशज ही राज्याधिकारी रहेंगे। हमारे पुत्र-पौत्र राजवंश से भ्रष्ट ही न हो जायेंगे बल्कि रोटी के टुकड़े टुकड़े के लिये उन्हें पांडवों के मुख की ओर देखना पड़ेगा। इससे कोई ऐसा प्रबन्ध कीजिये जिससे यह कष्ट मिटे।

धृतराष्ट्र—बेटा, तुम्हारी इस बात में कुछ सत्यता हो सकती है, पर किया क्या जाय! न्याय और धर्म की दृष्टि से राज्य पांडवों का है। दूसरे, मेरे स्वर्गीय भाई पांडु बड़े धर्मात्मा थे। वे मुझे पितृवत् समझते थे। मेरी आज्ञा की अव-हेलना कभी नहीं करते थे। युधिष्ठिर उन्हीं का पुत्र है।

जायेंगे, यदि न भी हुए तो वे हमारा बिगाड़ ही क्या सकते हैं !

धृतराष्ट्र—आप लोगों ने मुझे बड़े असमंजस में डाल दिया है। मालूम नहीं इसका परिणाम क्या होगा।

शकुनि—होगा क्या ! जो होना चाहिये वही होगा। बुरे काम का परिणाम कहीं अच्छा भी हुआ है ? बबूल के बीज से कभी आम हुआ है ?

दुर्योधन—मामा, तुम्हीं ने सलाह दी न थी कि पांडवों को वारणावत भेजा जाय ?

शकुनि—हां, मेरी तो अब भी यही सम्मति है। मेरे विचार में तो जितना जल्दी हो सके भेजा जाय।

धृतराष्ट्र—तो तुम उन्हें वारणावत भेजना चाहते हो ?

कर्ण—विचार तो यही है महाराज।

धृतराष्ट्र—पर उन्हें सहमत कैसे किया जाय ?

शकुनि—इस की चिन्ता आप न करें। इसका प्रबन्ध हम ने कर लिया है। हमारे गुप्तचरों ने वारणावत को अत्यन्त रमणीय स्थान बता बता कर उनका मन उसे देखने को लालायित कर दिया है। हमें आशा है कि वे स्वयं आप से वहां जाने की आज्ञा मांगेंगे।

(पांचों पांडवों का प्रवेश। एक एक करके धृतराष्ट्र के चरण छूते और प्रणाम करते हैं।)

धृतराष्ट्र—आओ बेटा, बैठो। (बैठने के लिए स्थानों की ओर संकेत करते हैं। सब बैठते हैं।)

राज्यलोभ से प्रेरित होकर अपने भाइयों के प्राण मत लो। इन कुमित्रों के संग में तुम्हारी बुद्धि कितनी भ्रष्ट होगई है—ज़रा सोचो तो !

दुर्योधन—माता जी, आप ऐसी अधीर क्यों हो रही हैं ? यदि पांडव दो चार दिनों के लिए वारणावत चले गए तो क्या अनर्थ हो जायगा ? फिर, जो भी कुछ हो रहा है, पिता जी की सम्मति से हो रहा है।

गांधारी—तुम्हारे पिता आंखों के अन्धे तो हैं ही, पर पुत्रमोह-वश बुद्धि के अन्धे भी हो रहे हैं। तुम्हारी और तुम्हारे इन पथ-भ्रष्ट साथियों की कुमन्त्रणा से उन्होंने कर्तव्याकर्तव्य के विचार को तिलांजलि दे दी है। तुम लोगों की उँगुलियों के इशारों पर नाच रहे हैं।

कर्ण—माताजी, हमारे महाराज—अपने स्वामी के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करना आप को क्या उचित है ?

गांधारी—स्त्री पति का आधा अङ्ग है। एक आधे अङ्ग को पथ-भ्रष्ट होते देखकर दूसरे आधे अङ्ग का उसे सुपथ पर लाना धर्म है। पति और पत्नी गृहस्थजीवन-रूपी रथ के दो पहिये हैं। एक के टूटने पर दूसरा निकम्मा हो जाता है। समूचा रथ ही निष्क्रिय हो जाता है।

कर्ण—पति-पत्नी-सम्बन्ध को आप से बढ़ कर संसार भर में दूसरा कौन जान सकता है देवी ! पर हम और महाराज जो भी कुछ कर रहे हैं, आपकी सन्तान के हित ही कर रहे हैं। यह प्रश्न युधिष्ठिर और दुर्योधन के राज्य लेने देने

धृतराष्ट्र—दुर्योधन तुम लोग न जाने मुझे किस अन्ध-कूप में गिरा रहे हो?

शकुनि—सन्तान के लिए अन्ध-कूप क्या नरक में भी गिरना स्वीकार करना पड़ता है।

(धृतराष्ट्र शकुनि की ओर के आश्रय से जाता है।)

कर्ण—भैया, आप ने पुरोचन को तो पक्का कर रखा है न?

दुर्योधन—बिलकुल पक्का। रुपये में बड़ी शक्ति है, यह असंभव कार्य को भी संभव कर देता है। पर अङ्गराज, कहीं तुम—

कर्ण—मेरी ओर से निश्शंक रहिये। अभी तक आपने कर्ण को नहीं पहचाना। यह शरीर आपके उपकारों के बोझ के नीचे इतना दबा हुआ है कि जन्मान्तर में भी इसे न उतार सकेगा। कर्ण की गरदन जो विपत्ति पर विपत्ति आने पर भी कभी नहीं झुकी और न झुकेगी—सदा आपके आगे झुकी रहेगी! जब कभी इस व्यक्ति की ओर से आपको संदेह के अङ्कुर-मात्र का भी भान हो उसी समय इसका सिर धड़ से अलग कर देना। मुख से 'आह' तक न निकलेगी।

दुर्योधन—मुझे तुम पर पूरा भरोसा है। मैंने अपनी जीवननैया की पतवार तुम्हारे हाथों में दी है। मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि तुम इसे इन भयंकर व्यालों और ग्राहों से बचा कर पार ले जाओगे।

(लाठी टेकती हुई गांधारी का सहसा प्रवेश)

गांधारी—पार नहीं ले जायेंगे, मँझधार में डुबो देंगे। बेटा, इन स्वार्थी लोगों से बहक कर अपना जीवन नष्ट मत करो।

राज्यलोभ से प्रेरित होकर अपने भाइयों के प्राण मत लो। इन कुमित्रों के संग में तुम्हारी बुद्धि कितनी भ्रष्ट होगई है—ज़रा सोचो तो !

दुर्योधन—माता जी, आप ऐसी अधीर क्यों हो रही हैं ? यदि पांडव दो चार दिनों के लिए वारणावत चले गए तो क्या अनर्थ हो जायगा ? फिर, जो भी कुछ हो रहा है, पिता जी की सम्मति से हो रहा है।

गांधारी—तुम्हारे पिता आंखों के अन्धे तो हैं ही, पर पुत्रमोह-वश बुद्धि के अन्धे भी हो रहे हैं। तुम्हारी और तुम्हारे इन पथ-भ्रष्ट साथियों की कुमन्त्रणा से उन्होंने कर्तव्याकर्तव्य के विचार को तिलांजलि दे दी है। तुम लोगों की उँगुलियों के इशारों पर नाच रहे हैं।

कर्ण—माता जी, हमारे महाराज—अपने स्वामी के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करना आप को क्या उचित है ?

गांधारी—स्त्री पति का आधा अङ्ग है। एक आधे अङ्ग को पथ-भ्रष्ट होते देखकर दूसरे आधे अङ्ग का उसे सुपथ पर लाना धर्म है। पति और पत्नी गृहस्थजीवन-रूपी रथ के दो पहिये हैं। एक के टूटने पर दूसरा निकम्मा हो जाता है। समूचा रथ ही निष्क्रिय हो जाता है।

कर्ण—पति-पत्नी-सम्बन्ध को आप से बढ़ कर संसार भर में दूसरा कौन जान सकता है देवी ! पर हम और
जो भी कुछ [illegible] सन्तान के [illegible]
रहे हैं। यह [illegible] और दुर्योधन के राज्य

का नहीं है, इस पर आप के पौत्र, प्रपौत्र और उन की भावी सन्तानों का भविष्य निर्भर है । क्या आप यह चाहती हैं कि पांडवकुल के लोग राजा कहलायें और कुरुकुल के लोग—आप के वंशज रोटी के टुकड़े टुकड़े के लिए बिलबिलाते दर दर के भिखारी बने फिरें ?

गान्धारी—मैं यह बातें कुछ नहीं समझती । मैं तो केवल न्याय चाहती हूँ । ईश्वर ने जिसे जिस का अधिकारी बनाया है उसी का उस पर स्वत्व होना चाहिये । यदि ईश्वर को राजसत्ता कुरुवंशजों के हाथ में देनी अभिप्रेत होती तो मेरे पति को अन्धा ही क्यों बनाते ? बेटा, भवितव्यता के मार्ग में बाधायें खड़ी कर अपने आप को चकना-चूर मत करो । पांडव धर्मात्मा, न्यायकारी और प्रजाप्रिय हैं । राज्य उन्हीं की बपौती है और उन्हीं को मिलना चाहिए ! स्वयं योगिराज कृष्ण, त्यागमूर्ति भीष्म, शस्त्रविद्या के पारंगत आचार्य द्रोण, मेरे देवर नीतिनिपुण विदुर—ये सब लोग पांडवों का पक्ष ही न्यायसंगत मानते हैं । बेटा दुर्योधन, इस दुराग्रह को छोड़ कर साधु मार्ग का अवलंबन करो और दृढ़व्रत भीष्म जी के जीवन से शिक्षा लो, जिन्होंने पावों पर लोटते हुए भी राज्य को लतिया कर हमारे वंश का नाम संसार में उज्ज्वल कर दिया है ।

दुर्योधन—माता जी, आप तो इतना कुछ कह गई जो हम समझ ही नहीं सके । पांडवों के वारणावत जाने पर आप

कर्ण—ये लोग अपनी इच्छा से यहां आ रहे हैं। उन्होंने स्वयं महाराज से यहां आने की अभ्यर्थना की है।

गांधारी—कर्ण, मैं तुम लोगों की इन कुचालों को खूब जानती हूँ। मेरी आंखें नहीं हैं पर कान तो हैं। तुम जानो, मैं ने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है, मेरी बात मानने या न मानने को तुम स्वतन्त्र हो। (जाती है।)

कर्ण—दुर्योधन भैया, मुझे तो माता जी की बातों में कुछ सार मालूम होता है। क्या राज्य लेने का कोई और उपाय नहीं है ?

दुर्योधन—बस पहले ही प्रवाह में वह गये ? अभी तो ध्येय की सफलता के लिए भयंकर तूफानों का सामना करना होगा। यदि अब भी चाहो...............

कर्ण—.........तो तुम्हारा साथ छोड़ दूं ? यह कभी न होगा दुर्योधन। मैं और तुम अभिन्नहृदय हैं। हमारा भविष्य एक है, आदर्श एक है। जिधर चलोगे आंखें मूंद कर तुम्हारा अनुसरण करूंगा, तुम्हारे साथ कुम्भीपाक में भी रहना पसन्द करूंगा।

दुर्योधन—तुम से यही आशा है। (दोनों जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(स्थान—एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण का गृह। उस में पांचों भाई और माता कुन्ती ब्राह्मणों के वेश में।)

अर्जुन—आज तो हम लोगों का एक तरह से पुनर्जन्म हुआ है।

सहदेव—इस में क्या सन्देह है ! यह तो किन्हीं पूर्वसञ्चित शुभ-

कर्मों का फल समझिये जो सकुशल यहां तक पहुंच गये हैं।

नकुल—हमारे इन वेशों को देखकर कोई नहीं कह सकता कि हम जन्म और कर्म से ब्राह्मण नहीं।

कुन्ती—(हंस कर) तुम लोग छद्मवेष में बहुत निपुण हो।

भीम—यदि विदुर चाचा म्लेच्छभाषा में इशारा को वास्तविक बात न सुझा देते तो हम लोगों का बचना कठिन ही नहीं बिलकुल असंभव था।

युधिष्ठिर—चाचा भी हम लोगों पर बहुत उपकार कर रहे हैं।

अर्जुन—उपकारों का भी कोई ठिकाना है! पहले दुर्योधन के षड्यन्त्र की सूचना दी फिर अपने ही एक विश्वस्त कर्मचारी द्वारा उस घर से निकालने के लिए घर से ले कर वन तक एक सुरंग खुदवा दी, पुनः गंगा पार कराने का प्रबन्ध किया।

युधिष्ठिर—यही नहीं, जब कभी अवसर पाते हैं, हमारा पक्ष लेकर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि—यहां तक कि महाराज तक को भी खरी-खरी सुनाते रहते हैं।

अर्जुन—हमारे लिए वे इतने कष्ट सहते हैं, समुद्र में रह कर मानो ग्राहों से वैर रखते हैं।

सहदेव—तभी तो दुर्योधन और कर्ण उन से सदा तने रहते हैं, कभी कभी उनका अपमान करने पर भी उतर आते हैं।

नकुल—पर अपनी अनुपस्थिति में हमें कोई कष्ट न हो, इसलिए वे इतना अपमान सहकर भी [illegible]

युधिष्ठिर—वे प्रकृति से ही साधु हैं। अच्छा, उस दुष्ट पुरोचन का क्या हुआ—कुछ सुना ?

भीम—सुना क्या आंखों से देखा। आग के प्रचण्ड होते ही उस की आंख खुली और वह भागने की चेष्टा करने लगा। पर भागता कहां से, मैंने सब द्वार तो पहले ही बन्द कर दिये थे। तब वह वहीं गिर गया। जब मैं सुरंग में घुसा तो उसके ये शब्द मेरे कानों में पड़े—दूसरों के लिये कुआं खोदने वाला स्वयं उस में गिरता है।

युधिष्ठिर—मृत्यु का कराल रूप जब मनुष्य के समक्ष उपस्थित होता है तो उसका मलिन से मलिन चित्त भी ऊपर से कुत्सित प्रवृत्तियों का आवरण हट जाने पर आइने की तरह निर्मल हो जाता है। पापी, अधर्मी और अत्याचारी पुरुषों को ईश्वर की याद तब आती है जब अन्तिम श्वास उनके कण्ठ में होते हैं।

अर्जुन—एक बात अवश्य माननी पड़ेगी। अपनी कला में वह अतिकुशल था।

भीम—निस्सन्देह, उसने घी, लाख, चर्बी, सन, घास, बांस आदि जलने वाले पदार्थों को मिला कर ऐसी कारीगरी से घर बनाया था कि यदि हमें पहले ही पता न लग जाता तो हम अवश्य धोखे में आ जाते।

कुन्ती—बेटा युधिष्ठिर, वरणावत से हम कितनी दूर हैं ?

युधिष्ठिर—वहां से हम बहुत दूर निकल आये हैं माता। खटके की बात नहीं।

... थोड़े समय में इतनी दूर निकल आने का श्रेय ...

हारा को है। हम सब लोग और विशेषतः माता जी बहुत चलने से थक कर चूर हो गई थीं। यदि भीम भैया हमें कन्धे पर उठा कर अपनी नौकारूपी भुजाओं द्वारा सुदूर-व्यापी समुद्रसदृश मार्ग के पार न पहुंचाते, तो यहां तक आना कठिन होता।

कुन्ती—अब कुछ समय के लिये तो उन दुष्टों से पीछा छूटेगा। कभी एक घड़ी भी वहां रहते चैन नहीं आया। मुझे तो सदा यही प्रतीत होता था कि तुम लोग ज्वालामुखी के शिखर पर हो। पर उन दुष्टों को हमारी मृत्यु का विश्वास होगा भी ?

(कुछ ब्राह्मणों का प्रवेश, पांडव उनका आतिथ्य करते हैं)

युधिष्ठिर—आप लोग कौन हैं भाई !

एक ब्राह्मण—हम ब्राह्मण हैं। आप कौन लोग हैं ?

युधिष्ठिर—हम भी ब्राह्मण हैं। आप किधर से आ रहे हैं और कहां जाने का विचार है ?

ब्राह्मण—हम वारणावत से आ रहे हैं और पांचाल देश को जा रहे हैं। चले तो हम सीधे पांचाल देश को जाते, पर मार्ग में एक ऐसी घटना हुई है जिससे मन बहुत भारी हो गया है। विचार है कि दो चार दिन यहां टिकने से वह शान्त हो जायगा, फिर आगे को चल पड़ेंगे।

युधिष्ठिर—कौनसी ऐसी घटना हुई है जिससे आप को इतना कष्ट हुआ है ?

ब्राह्मण—क्या कहूं भाई ! जिह्वाद्वारा बताना तो दर रहा स्मरण

मन में विचार आते ही हृदय कांप जाता है, समूचा शरीर थर्राने लगता है, आंखें पथरा जाती हैं।

युधिष्ठिर—ऐसी कौनसी घटना घटी है?

ब्राह्मण—क्या बताऊँ भाई! अनर्थ हो गया है,

भीम—कुछ बताओ भी।

ब्राह्मण—पांचों पांडवकुमार माता कुन्ती सहित जल गये हैं।

युधिष्ठिर—तब तो अनर्थ हो गया है। क्या यह बात सत्य है?

ब्राह्मण—इसकी सत्यता में कुछ सन्देह नहीं। जले हुए गृह से पांच मनुष्य और एक स्त्री की हड्डियां मिली हैं।

अर्जुन—(एक ओर होकर भीम से) वहां पर ये हड्डियां कैसे आईं?

भीम—(कुछ सोचकर) मेरे विचार में तो वह नाविक स्त्री, जो पूर्व रात्रि में हमारे आश्रम में आई थी, जल गई है, उसके साथ पांच पुत्र भी थे।

अर्जुन—बेचारी की हमारे लिये बलि होगई है। यदि हमें उसके वहां होने का पता होता तो उसे भी बचा लेते।

भीम—भवितव्यता!

युधिष्ठिर—(ब्राह्मणों से)इस घटना को सुनकर हमें बड़ा खेद हुआ है।

ब्राह्मण—तुमने ही नहीं, जिसने भी यह बात सुनी है बड़ा शोक किया है। दुर्योधन और उसके भाइयों के अत्याचारों को हम लोग इस आशा से सहन करते रहे कि थोड़े ही समय में धर्मराज युधिष्ठिर सिंहासनासीन होंगे और हमारे सब कष्ट मिट जायेंगे, घोर अन्धकार के बाद प्रकाश का विस्तार होगा। अब ———ों पर पानी फिर गया है।

कुन्ती—(अर्जुन से स्नेह से) बेटा, इस अन्धकारमय विपत्तिसागर में डूबती हुई भी मुझ अभागिनी की आंखों के सामने अब तुम लोगों के कीर्ति-आलोक की स्वच्छ छवि झलकती है, तो मुझे विपत्तियां भूल जाती हैं, अन्धकारसागर के स्थान में आलोकमय-आनन्दसागर में मग्न हो जाती हूँ। संसार में राज्य, ऐश्वर्य, भोग-विलास की कुछ सत्ता नहीं, सत्ता है केवल शुद्ध, स्वच्छ कीर्ति की—जिस की कीर्ति है वह सदा अमर है।

अर्जुन—माता जी, यह तुम्हारे पवित्र दूध और उच्च-शिक्षाओं का फल है।

कुन्ती—तुम लोगों के ऐसे उच्च विचार हैं तभी तो तुम इतने बड़े हो।

युधिष्ठिर—(ब्राह्मणों से) दुर्योधन को भी इस घटना का पता लगा है कि नहीं?

एक ब्राह्मण—पता क्यों नहीं लगा! उस दुष्ट का ही तो यह षड्यन्त्र था। पुरोचन से लाख का घर बनवा कर उसमें उन पवित्र आत्माओं को जलवा दिया है। उस दुष्ट पुरोचन को भी अपने पाप का फल मिल गया है—अपनी लगाई आग में आप ही जल मरा है। इसी तरह दुष्ट दुर्योधन को भी अपने कुकृत्यों का फल मिलेगा, अवश्य मिलेगा—ईश्वर का न्याय अटल है।

दूसरा ब्राह्मण—उसे फल अब ही मिल रहा है—सब लोग उसे धिक्कार रहे हैं। अपयश एक तरह की जीवन्मृत्यु है भैया, कीर्तिर्यस्य स जीवति।

तीसरा ब्राह्मण—मैंने सुना है कि कर्ण नाम का कोई सूतपुत्र है, उसने धनुर्विद्या में बहुत विख्याति पाई है। अस्त्र-परीक्षा के दिन वह अर्जुन से भी मुकाबला करने को उद्यत हो गया था। शठ कहीं का! सूतपुत्र होकर पांडुपुत्र के साथ मुकाबला! अच्छा किया अर्जुन ने, मुकाबलेसे इनकार कर दिया। अब तो परदा ढंका रहा भाई, पर यदि कहीं अर्जुन हार जाता तो? (अर्जुन और भीम एक दूसरे की ओर देखते हैं)—उसी दुष्ट कर्ण से दुर्योधन ने बड़ी मित्रता गांठ रक्खी है। उसी के परों पर बना उड़ता फिरता है। पर अब तो सर्वनाश हो गया है!

युधिष्ठिर—हम लोगों को भी इस घटना का बड़ा शोक हुआ है भाई, पर किया क्या जाय—भवितव्यता प्रबल है! आप कह न रहे थे कि आप पांचाल देश को जा रहे हैं?

ब्राह्मण—हां, वहीं जा रहे हैं। यहां पड़े पड़े आप क्या कर रहे हैं? आप लोग भी हमारे संग चलें।

भीम—पांचाल में है क्या जो हमें भी साथ घसीटते हो?

ब्राह्मण—भैया, तुम्हारा स्वभाव तो बड़ा तेज़ है। ब्राह्मण का स्वभाव शान्त और शीत होना चाहिये। यह राजसी प्रकृति क्षत्रियों को सोहती है, हमें नहीं।

भीम—(युधिष्ठिर से इशारा पाकर) क्षमा करें देवता। वास्तव में ही मेरा स्वभाव कुछ तीखासा है।

... ...पाल में कोई उत्सव है क्या?

ब्राह्मण—ऐसा वैसा उत्सव नहीं, बड़ा भारी उत्सव है। महाराज द्रुपद की कन्या द्रौपदी का स्वयंवर है। वहाँ पर देश-देशान्तरों के राजे-महाराजे एकत्र होंगे। तरह तरह के कौतुक होंगे, कई यज्ञ होंगे, जिन्हें सम्पादन करने के लिए दूर दूर के ऋषि, महर्षियों को निमन्त्रण दिये गये हैं।

भीम—महाराज, आप लोग भी तो निमन्त्रित ही होंगे, हम अनिमन्त्रित कैसे आयें ?

ब्राह्मण—हमें कौन निमन्त्रण देता है ! आज कल निमन्त्रण उन्हें मिलता है जिन की काँख में सिफारिशों का पुलिन्दा हो, या जिन के आगे पीछे लंबी लंबी पूछें—उपाधियां लगी हों। हम दरिद्र ब्राह्मणों को कौन पूछता है ! हम तो इस आशा से जा रहे हैं कि उत्सव की रौनक भी देखें और कुछ प्राप्ति भी हो जाय—एक पंथ दो काज।

भीम—(मुस्करा कर) यदि कुछ प्राप्ति की आशा हो तो हम भी चलें ?

ब्राह्मण—राजा के द्वार पर जा कर खाली हाथ थोड़े ही आयेंगे।

युधिष्ठिर—तब तो हम भी तैयार हैं।

ब्राह्मण—फिर देरी किस बात की ! चलो, अभी चलो।

सब पांडव—चलो, चलो।

(सब तैयार हो कर चलते हैं)

तीसरा दृश्य

(स्थान—पांचाल देश—एक बहुत बड़ा मंडप, उसके दाईं ओर सुन्दर भवन, उसमें देश-देशान्तरों के राजे-महाराजे कीमती वस्त्र और भूषणों से सजे बैठे हैं। बाईं ओर स्त्रियों के बैठने का भवन है। उसमें राजमहल की स्त्रियां बैठी हैं। मंडप के बीच में बहुत ऊँचाई पर एक चक्राकार यन्त्र घूम रहा है। उसके ऊपर एक मछली टंगी है। सामने की ओर हज़ारों दर्शक खड़े हैं। उनमें अपने संगी ब्राह्मणों के साथ ब्राह्मणवेषधारी पांडव खड़े हैं।)

भीम—(अर्जुन से) भैया, इस मंडप की शोभा अपूर्व है। इसे अमूल्य पदार्थों से अलंकृत करने में कोई त्रुटि नहीं रहने दी गई है। चारों ओर की दीवारों पर टँगे हुए बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों के ऊपर मणि मुक्ताओं की झालरें कैसी शोभा दे रही हैं?

अर्जुन—भूमि पर चंदन और गुलाब जल के छिड़काव से और अगुरु की सुगन्ध से सारा मंडप महक रहा है।

नकुल—महाराजाओं के बैठने के मंचों पर कैसे सुन्दर आसन बिछे हैं!

—महाराज की अपनी चौकी पर सोने और चांदी का काम कैसी कारीगरी से किया हुआ है!

एक कर कई राजे आकर अपने अपने

दुर्योधन और कर्ण आते हैं।

भीम—(अर्जुन से) भैया, पापात्मा दुर्योधन और नराधम कर्ण भी आ रहे हैं। देखिये ज़रा दुर्योधन की ग्रीवा की ऐंठन और गर्वपूर्ण गति !

अर्जुन—शायद हमें मृत जान कर इसके अभिमान और गर्व की मात्रा बहुत बढ़ गई है।

भीम—और इसे देखते ही मुझ में भी क्रोध की मात्रा बढ़ गई है। यदि तुम लोगों का भय न हो तो यहीं इसकी ऐंठी हुई गर्दन को ऐसे तोड़ दूं जैसे मत्त मातंग कदलीस्तम्भ को तोड़ देता है।

युधिष्ठिर—(अर्जुन से) देखते हो सामने उच्च मंच पर कौन बैठे हैं ?

अर्जुन—(ध्यान से देखकर) मेरे तृषित नेत्र-चकोर जिस मेघश्याम को कब से खोज रहे थे, उसी के अब दर्शन हुए हैं। (दोनों हाथ जोड़कर) वासुदेव, स्निग्ध और विनीत हृदय से प्रणाम करता हूं। (युधिष्ठिरसे) उनके पास बलदेव भैया भी हैं।

श्रीकृष्ण—(बलदेव से) बलदेव भैया, सामने की पंक्ति में जो पास-पास ब्राह्मणवेष में पांच व्यक्ति बैठे हैं—उन्हें पहचाना है ये कौन हैं ?

बलदेव—(ध्यानपूर्वक देखकर) पहचाना है, खूब पहचाना है। आग यदि राख के नीचे भी हो तो भी उसका प्रकाश नहीं छिपता। युधिष्ठिर का विशाल भाल, भीमका सुगठित शरीर, अर्जुन के आजानुलम्बी भुजद्वय और नकुल और सहदेव की, सुन्दर आकृति कभी भूल सकती हैं !

(द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न कुछ कहने को उठता है। सर्वत्र सन्नाटा छा जाता है।)

धृष्टद्युम्न—पूज्य नरेशो और भद्रजनों,

जो कुछ मैं आपके सम्मुख कहने को खड़ा हुआ हूँ आप उसे ध्यान से सुनें। इस मण्डप के मध्य में यह धनुष रक्खा है और उस के पास पांच बाण भी धरे हैं। ऊपर अधर में एक चक्र चल रहा है और उस के ऊपर एक मछली टंगी है। आप में से जो भी व्यक्ति इस धनुष पर तीर चढ़ाकर चक्र के रंध्र में से मछली की आँख बेधेगा उसी के गले में मेरी बहन द्रौपदी वरमाला पहनायेगी।

(द्रौपदी को साथ लेकर धृष्टद्युम्न वहां जाता है जहां अन्यान्य राजे-महाराजे बैठे हैं। धृष्टद्युम्न के हाथ में एक सुंदर पुष्पमाला है।)

धृष्टद्युम्न—(द्रौपदी के साथ चलता चलता) बहन, हस्तिनापुराधीश धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ कुमार, दुर्योधन अपने भाईयों के साथ सामने बैठे हैं। उनकी दाईं ओर महाधनुर्धर अङ्गराज कर्ण हैं। गांधारराज सुबल के पुत्र शकुनि और विराट् के पुत्र शंख और उत्तर भी यहां विराजमान हैं। महाराज समुद्रसेन के सुपुत्र चन्द्रसेन, महापराक्रमी भगदत्त, मद्रराज शल्य, महाप्रतापी पुरुवंशी दृढ़धन्वा और राजा उशीनर के पुत्र शिवी आदि अनेक नरेशों ने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। वासुदेव कृष्ण और हलधर

असंख्य यादवगण के साथ यहां पधारे हैं। सिन्धुराज जयद्रथ, पराक्रमी शिशुपाल, जरासन्ध और दूसरे अगन्यान्य नृपतिगणों ने इस उत्सव में सम्मिलित हो कर हमें कृतार्थ किया है।

बहन, इनमें से जो कोई भी मछली की आँख को बेधे उसी के गले में यह वर माला डाल देना।

(बाजे बजने लगते हैं)

(सब से पहले जरासंध उठता है।)

जरासन्ध—(उच्च स्वर से) आप लोगों के सामने मैं पहले ही बाण से इस लक्ष्य को बेध कर पांचाली का पाणिग्रहण करता हूँ।

(एक एक कर पांचों तीर चलाता है। किसी तीर से भी लक्ष्यवेध नहीं होता।)

सब लोग—आइये आइये।

एक दर्शक—अपनासा मुँह लेकर आइये।

दूसरा—आये थे एक ही तीर से लक्ष्य बेधने को!

जयद्रथ—(अपने पास बैठे एक राजा से) जरासन्ध का बल मन्द हो गया है। इसकी भुजाओं में अब वह पराक्रम नहीं रहा, नहीं तो यह लक्ष्य भी न बेध सकता! मैं इसे बेध कर द्रौपदी को प्राप्त करता हूँ।

(बड़े गर्व के साथ आकर धनुष उठाता है।)

लो उड़ गया लक्ष्य (कह कर तीर छोड़ता है।) तीर छूटते ही उसके धक्के से मुँह के बल भूमि पर गिर पड़ता है...

मुकुट सिर से उड़ कर दूर जा गिरता है। दर्शक और सब राजे हंसने लगते हैं।)

एक दर्शक—लक्ष्य तो नहीं उड़ा, पर मुकुट साफ उड़ गया है।

दूसरा—उड़ तो गया, चाहे कुछ हो! (सब ठठाकर हंसते हैं। जयद्रथ लज्जित हो कर अपने स्थान पर जा बैठता है।)

शिशुपाल—आखिर जयद्रथ भी तो बूढ़ा हो गया है। इसे यहां आना ही न चाहिये था। जो वस्तु जिसके भाग्य में होती है, वह उसे ही प्राप्त होती है। कृष्णा मेरी ही अर्धांगिनी होगी।

एक राजा—पहले लक्ष्य तो वेध लो, पीछे कृष्णा को अर्धाङ्गिनी बनाने का नाम लेना।

शिशुपाल—लक्ष्य-वेधन करना भी कोई बड़ी बात है!

(बड़े गर्व के साथ आकर धनुष उठाता है। उस पर तीर रखने की ओर लगाता है, पर तीर चढ़ता ही नहीं।)

शिशुपाल—(धनुष को भूमि पर रख कर) धनुष में कुछ दोष है। पहले इसे ठीक करना चाहिए।

एक दर्शक—अङ्गूर खट्टे हैं।

दूसरा—जितने अकड़ कर आये थे, उतने लज्जित हो कर जा रहे हैं।

तीसरा दर्शक—बड़ों की कही हुई कहावतों में बड़ी सचाई है—'अहंकार का सिर नीचा' कहावत इस पर कैसी ठीक लागू होती है!

... है और धनुष पर तीर चढ़ा देता है।)

एक दर्शक—यही है सूतपुत्र कर्ण ?

दूसरा—हां, यही सूतपुत्र—

(दर्शकों में से सूतपुत्र—सूतपुत्र—सूतपुत्र—की दबी आवाजें आती हैं।)

द्रौपदी—(ऊंचे स्वर से) मैं सूतपुत्र को न वरूंगी।

(यह सुन कर कर्ण के चेहरे का रंग उड़ जाता है और धनुष को पृथ्वी पर रख कर लौट जाता है।)

एक राजा—इसे कहते हैं—खाली हाथ आये और खाली हाथ गये।

दूसरा—सूतपुत्र हो कर इसे द्रौपदी को ब्याहने का साहस ही न करना चाहिये था।

तीसरा—दुर्योधन ने अङ्गदेश का राज्य दे दिया तो क्या जाति भी बदल दी ?

चौथा राजा—क्या कोई जाति बदल सकता है—काकः काकः बकः बकः।

राजा द्रुपद—(आसन पर खड़ा हो कर) ऐसे ऐसे अगद्-विख्यात राजा-महाराजाओं ने लक्ष्य बेधने का प्रयास किया पर किसी से कुछ न बन पड़ा। मुझे आज ऐसा मालूम हो रहा है कि यह क्षत्रिय-जननी भारत-वसुन्धरा क्षत्रियवंश से हीन हो गई है। यहां पर कोई सच्चा क्षत्रिय नहीं रहा। यदि आज धनुर्धर-श्रेष्ठ सत्यसाची अर्जुन होते तो इस निराशा का मुख न देखना पड़ता।

अर्जुन—(भीम से) भैया, क्षत्रियकुल का यह अपमान हम से नहीं सहा जाता। आप जाकर लक्ष्यवेध करें।

भीम—द्रुपद ने नाम तुम्हारा लिया है भैया, अब द्रौपदी तुम्हारी हो चुकी। यदि तुम क्षत्रिय हो तो लक्ष्य वेध कर द्रौपदी का पाणिग्रहण करो।

(अर्जुन श्रीकृष्ण की ओर देखता है। कृष्ण उसे लक्ष्य बेधने को इशारा करते हैं। अर्जुन उन्हें सिर नवा कर प्रणाम करता है।)

अर्जुन—(ऊंचे स्वर से) क्षत्रियों में चाहे ओजस् न रहा हो। पर ब्राह्मणों में ब्रह्मवर्चस् अभी तक वैसे ही देदीप्यमान है। जो काम क्षत्रिय-भुजा नहीं कर सकी वह ब्राह्मण-भुजा करके दिखा देगी।

(आगे बढ़ कर धनुष उठा लेता है)

(अर्जुन को देखकर ब्राह्मणमंडली में जोश उत्पन्न होता है। वे लोग अपने मृगचर्म और कमण्डलुओं को उछाल उछाल कर हर्षनाद करते हैं।)

एक ब्राह्मण—(अर्जुन को) धन्य हो बेटा! तुमने ब्राह्मणकुल का मस्तक संसार में ऊँचा कर दिया है।

दूसरा ब्राह्मण—यदि इस छोकरे ने यह काम कर दिया तो क्षत्रियों के मुख पर कालिख पुत जायगी।

तीसरा ब्राह्मण—करेगा क्यों न, अवश्य करेगा। देखते नहीं हो इसकी आजानु लंबमान भुजाएँ, वृहद् वक्षःस्थल, विशाल भाल और उस पर से टपकता हुआ तेजःपुञ्ज।

चौथा ब्राह्मण—इसे देख कर मुझे ब्राह्मणवंशावतंस साक्षात् जामदग्नेय परशुराम जी का स्मरण आता है। इसकी गजशुण्ड के समान भुजायें, भरे और उभरे हुए कंधे यह बता रहे हैं कि इसे अस्त्रविद्या का बहुत अभ्यास है।

कुछ ब्राह्मण—जो काम जरासंध, जयद्रथ, शल्य और शिशुपाल आदि अस्त्रविद्यापारंगत न कर सके, उसे यह कल का छोकरा ब्राह्मण क्या करेगा!

और ब्राह्मण—यही बात है, ब्राह्मणों का अपमान और हँसी करावेगा।

एक वृद्ध ब्राह्मण—भाइयो! हम लोगों की आजीविका क्षत्रियों पर ही निर्भर है। यह छोकरा अपनी चंचलता और धृष्टता के कारण इन राजाओं को हमारा शत्रु बना देगा।

कुछ ब्राह्मण—इसे वापिस बुला लेना चाहिए।

एक ब्राह्मण—अरे तुम लोग इन क्षत्रियों से क्यों दबे फिरते हो? आजीविका देने वाला ईश्वर है। हमें इस ब्राह्मण का उत्साह बढ़ाना चाहिए।

(ब्राह्मण लोग 'धन्य हो बेटा', 'बेध दो लक्ष्य', 'ब्राह्मणवंश का नाम उज्ज्वल कर दो' इत्यादि नाद करते हैं। अर्जुन धनुष पर तीर चढ़ाकर पहले तीर से ही लक्ष्य बेध देता है। ब्राह्मणों के हर्ष का पारावार नहीं रहता। अंगोछा, कमण्डलु, मालायें और जो कुछ भी किसी के पास है उसे आकाश में उछाल उछाल कर हर्षनाद करते हैं। द्रौपदी अर्जुन के गले में वरमाला डालती है। नरसिंघे बजने लगते हैं। फूलों की वर्षा होने लगती है।

एक ब्राह्मण—(अर्जुन के पास जाकर और अपनी सफेद दाढ़ी हाथ में लेकर) बेटा, तूने आज इस सफेद दाढ़ी की लाज रख ली है।
(अर्जुन उसे प्रणाम करता है और द्रौपदी को लेकर चलता है। सब ब्राह्मण और उसके चारों भाई उसके पीछे चलते हैं।)

शिशुपाल—आज अनर्थ हो गया है! एक ब्राह्मणशृगाल क्षत्रिय-शार्दूलों के मुखों से शिकार छीन कर ले जा रहा है और हम लोग निःस्तेज होकर देख रहे हैं!

जयद्रथ—इस क्षत्रियकुलाङ्गार द्रुपद ने हमारा अपमान किया है।

जरासंध—इसी समय द्रुपद और द्रौपदी दोनों को मार देना चाहिए।

कर्ण—द्रौपदी ने मुझे सूतपुत्र कह कर अपमानित किया है, इस अपमान का बदला मैं अवश्य लेकर रहूँगा।

सब राजे—मारो मारो—ये जीवित न रहने पायें।
(सब राजे अर्जुन को मारने दौड़ते हैं। भीम एक वृक्ष उखाड़ कर उससे बहुतों को मार देता है और कुछ भाग जाते हैं।)

सब ब्राह्मण—(अपने अपने कमण्डलु और मृगछाला उछालते हुए) डरना नहीं ब्राह्मणकुमार, हम सब तुम्हारे साथ हैं। हम लोग तुम्हारे पक्ष में होकर शत्रुओं से लड़ेंगे।

अर्जुन—आप लोग दूर ही खड़े होकर कौतुक देखते रहें।

भीम—हमारे पास आप न आयें, कहीं गेहूँ के साथ घुन भी न पिस जाय।

(कर्ण अर्जुन के सामने आता है।)

कर्ण—अरे ब्राह्मणाधम, जो यज्ञांश देवताओं का था उसे कुत्ते की तरह उठा कर तू कहां ले जा रहा है? अब दिखा वही भुजबल जिस से तूने लक्ष्यभेद किया था।

(अर्जुन पर तीर छोड़ता है।)

शल्य—(भीम से) नीच ब्राह्मण, हम लोगों के ही दान से भैंसे की शकल बना कर हमें ही मारने को उद्यत हुआ है?

(भीम पर खड्गप्रहार करता है। भीम उसे वृक्ष की शाखा पर लेता है। शाखा टूट जाती है।)

भीम—यह ले उस दान का प्रतिफल। (एक बड़ी वृक्षशाखा उसके सिर पर मारता है। वह अचेत होकर गिर पड़ता है।)

कर्ण—आज ब्रह्मांड के सिर और पैरों में युद्ध हो रहा है। अभी निर्णय हो जायगा कि बली कौन है—सिर या पैर?

अर्जुन—अरे शूद्रापसद, यही बाण यह निर्णय कर देगा (यह कह कर बाण चलाता है। कर्ण बेहोश हो जाता है।)

कर्ण—(होश में आकर) द्विजश्रेष्ठ, तुम्हारे अथक बाहुबल और शस्त्रचातुरी को देख कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। मैं ब्राह्मणसत्ता के आगे सिर झुकाता हूँ। आज मुझे ज्ञात हुआ कि ब्राह्मणवंश में एक नहीं कई परशुराम हैं।

अर्जुन—कर्ण, तूने बहुत अच्छा किया जो हार मान ली, नहीं तो क्षत्रियों के रक्तपात से आज वसुन्धरा रक्त हो जाती।

(यह कह कर उसने पास खड़े हुए रथ में द्रौपदी और चारों भाइयों को बिठा लिया। फिर रथ भगा कर चला गया।)

चौथा दृश्य

(स्थान—धृतराष्ट्र का महल, धृतराष्ट्र एकान्त में बैठा है।)

धृतराष्ट्र—न जाने मेरी आत्मा मुझे क्यों धिक्कारती रहती है। उठते-बैठते, सोते-जागते अन्तरात्मा से सदा यही आवाज़ आती है—धृतराष्ट्र ! तुझे धिक्कार है, तू अतिनिष्ठुर, पापात्मा और कृतघ्न है। मेरी समझ में मैंने ऐसा कोई भयंकर पाप नहीं किया है, सिवा......पर उसमें मेरा क्या अपराध है। मैंने तो उन्हें केवल कुछ समय तक दुर्योधन से दूर करने के लिये वारणावत में भेजा था। वहां यदि जल कर उनकी मृत्यु हो गई तो इस में मेरा क्या दोष ! (व्याकुल होकर) फिर वही आवाज़ ! हां, इस में कुछ मेरा भी अपराध है। यह जान कर भी कि दुर्योधन पांडवों से सदा लाग-डांट रखता है—मैंने दुर्योधन के कहने से उन्हें वहां भेजा ही क्यों ! पुत्रमोह में फंस कर मैंने यह कुकर्म किया है। सन्तान का मोहबन्धन है ही ऐसा। (कुछ सोच कर) दुर्योधन को पांचाल देश में गये बहुत समय हो गया है। अब तक उसका कोई समाचार नहीं आया।

(विदुर का प्रवेश)

विदुर—प्रणाम महाराज !

धृतराष्ट्र—आओ विदुर, बैठो।

[illegible]या, आज एक बड़ी खुशी का समाचार सुनाने . . . .

धृतराष्ट्र—(खुशी से) दुर्योधन ने स्वयंवर में विजय पाई होगी ? इस से मुझे बड़ी आशा थी।

विदुर—यह बात नहीं भैया ! शुभ समाचार यह है कि पांचों पांडवकुमार जीवित हैं।

धृतराष्ट्र—(ऊपर से हर्ष प्रकाश करता हुआ) क्या वे जीवित हैं ? विदुर, यह समाचार वास्तव में आनन्दप्रद है। उन की मृत्यु से मेरे भाई पांडु के वंश का लोप हो गया है—इस बात का शोक मेरे हृदय को सदा घुन की तरह काटता रहता था। अब मुझे शान्ति मिली है। परन्तु तुमने अभी तक स्वयंवर का कुछ समाचार नहीं सुनाया।

विदुर—अत्यन्त हर्ष के कारण मैं आधा समाचार ही सुना पाया हूँ। द्रौपदी के स्वयंवर में जब किसी क्षत्रिय से लक्ष्यवेधन न हो सका, तो.........

धृतराष्ट्र—तो मेरे दुर्योधन ने.........

विदुर—दुर्योधन ने नहीं, ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन ने लक्ष्य वेध कर द्रौपदी का पाणिग्रहण कर लिया है। (धृतराष्ट्र के चेहरे का रंग उड़ जाता है)

(संभल कर)

धृतराष्ट्र—अर्जुन ने लक्ष्य वेध किया है ? एक ही बात है-दुर्योधन ने किया या अर्जुन ने किया। मुझे अर्जुन भी दुर्योधन की तरह प्यारा है।

(दुर्योधन और कर्ण का प्रवेश)

दुर्योधन—(रुखाई से) पिता जी, मैं आप से एक बात कहना चाहता हूँ।

विदुर—मुझे जाने की आज्ञा दीजिये, महाराज। शायद दुर्योधन एकान्त में बात करना चाहता है।

(जाता है।)

धृतराष्ट्र—पांचाल से कब आये बेटा? यह सुन कर मेरे मन को ठेस लगी है कि द्रौपदी ने तुम्हें—

दुर्योधन—मुझे नहीं वरा—यही कहने को थे न पिता जी? इससे तो आपको बड़ी खुशी हुई होगी—और चाचा से ही यह खुशी का समाचार मिला होगा?

धृतराष्ट्र—दुर्योधन, तू शायद यह समझता है कि मैं विदुर के कहने पर चलता हूं। यह समझना तेरा भ्रम है। मैं जानता हूँ कि वह पांडवों का पक्षपाती है। मैं उसके आगे उनके गुणों का बखान इसलिए किया करता हूँ कि वह मेरे मन के वास्तविक मतों को भांप न सके।

दुर्योधन—चाचा ने यह भी बता दिया होगा कि पांचों भाई और उनकी माता अभी जीवित हैं।

धृतराष्ट्र—यही बताने को तो वह आया था।

कर्ण—महाराज, हम आप से अब यह निश्चय करने आये हैं कि इस नई परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिए?

धृतराष्ट्र—तुम दोनों नीति-कुशल हो, जो बताओगे वही करूंगा।

दुर्योधन—जिस उपाय से इन पांडवों से हमारा पीछा छूटे—उसी पर विचार करने को हम आये हैं।

धृतराष्ट्र—उपाय तुम्हीं बताओ!

दुर्योधन—द्रुपद जैसे यशस्वी और प्रतापी राजा का अर्जुन से जो नया सम्बन्ध हो गया है वह बहुत बुरा हुआ है। इससे पहले कि उनमें घनिष्ठता बढ़े, हमें कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे द्रुपद और अर्जुन में मनमुटाव हो जाय और द्रुपद उन्हें अपने यहां से निकाल दे।

कर्ण—द्रुपद जैसा बुद्धिमान और नीतिज्ञ राजा यह कभी न करेगा। पांडवोंसे पराक्रमी राजकुमारों के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने से तो वह फूले नहीं समाता होगा। यह उपाय ठीक नहीं, कोई और बताओ।

दुर्योधन—दूसरा उपाय यह है कि पांचों भाइयों में किसी न किसी बात पर परस्पर झगड़ा उत्पन्न किया जाय जिससे वे अलग-अलग हो जायें। आपस की फूट से प्रत्येक को मार देना अति सुगम होगा।

कर्ण—दुर्योधन, तुम नहीं जानते कि उनके शरीर पांच हैं पर उनमें हृदय एक है, आत्मा एक है। वे एक हाथ की पांच उँगलियां हैं। उनमें फूट डालना असम्भव है।

दुर्योधन—यह भी एक उपाय हो सकता है कि भीम को विष देकर मार दिया जाय। भीम को खाने पीने की बड़ी लालसा रहती है, अतः उसे भोजन में विष देना आसान होगा। भीम की मृत्यु से पांडव सहायहीन और निर्बल हो जायेंगे। तब उन्हें मारना सहल होगा।

कर्ण—दुर्योधन, तुम इस प्रकार के तुच्छ उपायों का प्रयोग कभी से कर रहे हो, पर पांडवों का [illegible] भी बांका नहीं कर

सके। इसलिए अधम और भीरु जनों के उपायों को छोड़ कर शूर क्षत्रियों के उपायों का अवलम्बन करो। तुम क्षत्रिय हो, वीर क्षत्रियों के वंशज हो। कुत्सित चालों से अपने उज्ज्वल वंश को कलङ्कित न करो। मेरे विचार में तो एक ही उपाय है जिससे काम निकल सकता है। वह यह है कि जड़ जमने से पहले ही पांडवों को दबा लेना चाहिए। इस समय द्रुपदपक्ष के लोग हमसे निर्बल हैं। ये युद्ध के लिए तैयार नहीं हैं। दूसरे, यादवपति कृष्ण भी पांडवों से दूर हैं। तीसरे, किसी और भूपति से अभी पांडवों की मित्रता नहीं हुई है। अतः इस समय उन्हें परास्त करना सहल होगा।

धृतराष्ट्र—बेटा, जो कुछ अङ्गराज कर्ण कह रहा है, वही मुझे समय और नीति के अनुकूल जान पड़ता है। मेरी इच्छा है कि भीष्म और द्रोण से भी सलाह कर लेनी चाहिए, क्योंकि उनकी सहायता के बिना हम कुछ नहीं कर सकते।

(भीष्म और द्रोण का प्रवेश)

लो ये दोनों भी आ गये हैं! (दोनों से) अभी आप का जिकर हो रहा था कि आप आगये।

भीष्म—बहुत अच्छा हुआ कि हम ठीक उसी समय पहुंचे हैं जब हमारी आवश्यकता है।

धृतराष्ट्र—(भीष्म से) आपने पांडवों के जीवित होने का समाचार तो सुन ही लिया होगा? अब कोई ऐसा उ

निश्चित करना है जिस से भाई-भाई का झगड़ा मिट जावे।

भीष्म—धृतराष्ट्र, मेरे विचार में पांडवों के साथ लड़ाई झगड़ा करना उचित नहीं। मेरे लिए तुम और तुम्हारे भाई पांडु दोनों समान हैं। इसलिए उनके और तुम्हारे पुत्रों को मैं एकसा प्यार करता हूं। पर पांडव पितृहीन हैं. उनकी रक्षा तुम्हारा धर्म है और मेरा भी। देखना यह है कि इन में झगड़े का कारण क्या है। मेरे विचार में तो कौरव और पांडवों में विवाद का मूलकारण राज्य है। इसे बांट कर आधा कौरव ले लें और आधा पांडव। यद्यपि राज्य का न्याया-नुकूल अधिकार पांडवों का है तो भी पांडव धर्मात्मा हैं—वे इस निर्णय में मीन-मेख न करेंगे।

द्रोण—जो कुछ भीष्म जी ने कहा है मैं भी उस का अनुमोदन करता हूं। इस में सब की भलाई है। ऐसा करने से आपका यश फैलेगा। साथ ही आपकी शक्ति के साथ यदि पांडवों की शक्ति भी मिल गई तो संसार की कोई शक्ति भी आपके सामने टिक न सकेगी।

कर्ण—मैं आप के कथन का अनुमोदन नहीं कर सकता। पांडवों से हमारा समझौता कभी न हो सकेगा। एक दिन उन से मुठभेड़ होगी ही। यदि ऐसा है तो अब ही वह क्यों न हो जाय जब कि उनका पक्ष निर्बल है। आचार्य को शायद अपने प्रियतम शिष्य से युद्ध करने में संकोच होता है।

द्रोण— मिथ्याभिमान की ऐसी बातें तभी तक होंगी बेटा, जब तक देवसम पांडवों का साक्षात् नहीं हुआ । इस भूमंडल पर अब तक ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ जो अर्जुन के पैने तीरों के सामने क्षण भर भी टिक सके ।

कर्ण—युद्ध छिड़ने दो आचार्य, फिर देखना कर्ण का पराक्रम । पांचों भाइयों को मैं अकेला ही यमसदन भेजने की क्षमता रखता हूँ ।

भीष्म—(व्यंग्य से) तभी उन्हें यमसदन भेज कर द्रौपदी को छीन लाये हो ।

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन और कर्ण, शन्तनुपुत्र भीष्म और धनुर्विद्याचार्य द्रोण के वचन राजनीति और धर्मके अनुकूल हैं । मेरी भी यही सम्मति है कि पांडवों को आधा राज्य देकर इस कलह को मिटाना चाहिए ।

(श्रीकृष्ण का प्रवेश । उन्हें देख सब लोग उठ खड़े होते हैं और धृतराष्ट्र से संकेत पाकर विदुर उन्हें उच्च आसन पर बैठाते हैं ।)

धृतराष्ट्र—यादवेश, आपने बड़ी कृपा से इस भूमि को चरण-रजसे पवित्र किया है । क्या आज्ञा है ?

कृष्ण—महाराज धृतराष्ट्र, मैं पांचालनरेश द्रुपद और उनके सहायक दूसरे नृपगण का सन्देश लेकर उपस्थित हुआ हूँ । उन्होंने आप से सविनय प्रार्थना की है कि पांडव-कुमार अब बालक नहीं रहे । उन्हें भी अब स्वकुलोचित मान-मर्यादा रखने के लिए राज्य के कुछ भाग —

है। इस लिए पिछली बातों को भूलकर आप उन्हें पुत्रवत् समझ कर उनका पालन करें।

धृतराष्ट्र—वासुदेव, आप ठीक समय पर सन्देश लेकर आये हैं। अब इसी बात पर विचार हो रहा था। भीष्म और द्रोण जी की सम्मति के अनुसार हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पांडवों को आधा राज्य दिया जावे। मेरे विचार में खांडवप्रस्थ का प्रान्त उनके लिए उत्तम होगा।

कृष्ण—मुझे विश्वास है कि आपके निर्णय को पांडव सहर्ष स्वीकार करेंगे

दुर्योधन—वे स्वीकार क्यों न करेंगे! अकिञ्चन भिखारियों को राज्य मिल जाय और वे स्वीकार न करें!

कर्ण— इसमें क्या संदेह है! उनका न घर था और न घाट, दर-दर ठोकरें खा रहे थे। अब राजा बन जायेंगे।

कृष्ण—कर्ण, मिटते हुए कलह को मिटाना ही उत्तम है। तुम जैसे चाटुकारों ने ही दुर्योधन का दिमाग़ बिगाड़ रक्खा है। पांडव महाशूर हैं, वे अपने अधिकार को बाहुबल से......

कर्ण—रहने दो केशव, महाशूरता उनकी तब मानी जाती जब चाटूक्तियों के स्थान में बाहुबल के प्रयोग से यह राज्य लेते।

कृष्ण—तुम लोगों को उनके बाहुबल का ज्ञान द्रौपदी-स्वयंवर में क्या नहीं हो चुका?

दुर्योधन—वासुदेव, जाकर उन्हें कह दो कि मैं उन्हें सुई की नोक-भर भूमि भी देने का नहीं।

कृष्ण—महाराज धृतराष्ट्र, अब किसकी बात को ठीक समझूं—आपकी या दुर्योधन की ?

धृतराष्ट्र—दुर्योधन, मैं कलह मिटा रहा हूँ और तुम बढ़ा रहे हो। द्वारिकाधीश, जो मैंने कहा है वही होगा। पांडवों को कह दीजिये कि खांडवप्रस्थ पर अपना अधिकार कर लें।

श्रीकृष्ण—तथास्तु। (चलने को खड़े होते हैं। सब लोग खड़े हो जाते हैं।)

(पटाक्षेप)

पांचवाँ दृश्य

(स्थान—*पांडवों का सभाभवन, दुर्योधन, कर्ण और शकुनि घूम घूम कर उसकी शोभा देख रहे हैं।*)

दुर्योधन—ऐसा अपूर्व सभाभवन पहले कभी देखने को नहीं मिला। यहाँ पर शिल्पियों की विद्या की अन्तिम सीमा है।

कर्ण—इन्द्र और कुबेर आदि देवताओं के सभाभवन भी इसके सामने नहीं टिक सकते।

शकुनि—सभाभवन क्या है खासा लंबा-चौड़ा अखाड़ा है। एक एक हज़ार हाथ तो इसकी परिधि है।

कर्ण—सोने के पेड़ों में अमूल्य मणिमुक्ताओं के फल लगे हुए हैं।

दुर्योधन—और उनके परस्पर प्रतिबिम्बित होने से जो प्रकाश फैल रहा है उसके सामने सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश भी का है।

शकुनि—इसकी छत को देखो, यह इतनी ऊँची है कि मानों आकाश से बातें कर रही है।

कर्ण—और इस को उठाने वाले स्तम्भ कैसे गोलाकार बने हुए हैं! इन पर रंग-रंग के बेलबूटे कैसे सज रहे हैं!

(कुछ आगे चल कर)

दुर्योधन—इस सरोवर की शोभा कैसी अपूर्व है! इसमें खिले हुए शतदल कमल सोने के बने हैं।

कर्ण—और उन कमलों के पत्तों को भी देखा है? ये वैदूर्यमणि के बने हैं।

शकुनि—सरोवर में तैरती हुई मछलियों के वर्णों की गणना नहीं हो सकती। उस मछली का वर्ण (मछली की ओर इशारा करके) छाया छाया में बदल रहा है।

(दो कदम चलता है, उसका माथा दीवार से टकराता है, वहाँ खड़े हुए सब लोग हंस पड़ते हैं।)

कर्ण—ध्यान से चलो भैया। यह कमरे का द्वार नहीं बिल्लौर की बनी हुई दीवार है।

शकुनि—भवन की कक्षा तो हमने अच्छी तरह देख ली है। आओ इधर चलें।

(कुछ आगे जाते हैं)

दुर्योधन—इधर कहां लौटे मामा? इधर तो पानी ही पानी है, आगे चलने से कपड़े भीग जायेंगे।

(धोती और अंगरखे को संभाल कर आगे बढ़ता है। सामने खड़े कुछ नौकर हंस पड़ते हैं।)

दुर्योधन—(लज्जित होकर) मैंने समझा था यह जल का सरोवर है।

कर्ण—यह सरोवर नहीं—स्वच्छ स्फटिक का फर्श है।

शकुनि—आगे इस ओर न जाना चाहिये। कहीं और लज्जित न होना पड़े।

दुर्योधन—चलिए, दाईं ओर चलें।

(थोड़ा आगे चल कर पानी के तालाब में गिर पड़ता है। उसके कपड़े भीग जाते हैं। सामने खड़ा भीम हंसता है। शकुनि, दुर्योधन की भुजा पकड़ कर उसे निकालता है)

(युधिष्ठिर नये कपड़े लेकर भाग आते हैं)

युधिष्ठिर—भैया, कहीं चोट तो नहीं लगी ? लो ये वस्त्र पहन लो।

दुर्योधन—(वस्त्र लेकर) नहीं नहीं, कोई चोट नहीं आई। पानी तो मैंने देख लिया था पर संभलते-संभलते पांव फिसल ही गया।

युधिष्ठिर—अच्छा हुआ कोई चोट नहीं आई। आप और सैर करें। (जाते हैं)

दुर्योधन—अब आगे न जाना चाहिए।

शकुनि—यहीं से लौट चलना चाहिए। यहां अधिक ठहरना अपमानजनक है।

दुर्योधन—अपमान का ज़िकर न करो मामा। यहां की चप्पा-चप्पा भूमि सहस्रों मुखों से मेरा अपमान कर रही है। मैं ही ऐसा निर्लज्ज हूँ कि जो अब तक जीवित हूँ।

कहाँ, तुम जैसे शूर की सहायता पाकर ही मैंने दुःख भुलाया!

कर्ण—मित्र, समय पर करना न करने का नहीं काम होता है। मेरे कथन के अनुसार यदि हौसिलेपरवर के बाद ही तुम लोग इसको निर्णय कर देते तो आज इस तरह अपमानित न होना पड़ता। तुम लोगों ने स्वयं राजलक्ष्मी एवं सिंहासन इन सभी को पाया है। फिर भी निराश होने की बात नहीं। जब तक यह कर्ण अपने पसीने के स्थान पर लोहू बहाने और कौरवों की लाज और मान की रक्षा के लिये युद्धस्थल में प्राणों की आहुति देने को प्रस्तुत है, तब तक अर्जुन और उसके भाई तो क्या, सप्तसमुद्रपति सहित साक्षात् इन्द्र भी तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।

दुर्योधन—तुम दोनों मेरे अभिन्नहृदय मित्र हो। इसलिए तुम्हारे सामने अपने मानसिक भावों को प्रकट करना अनुचित नहीं। अङ्गराज और मामा, इस समय ईर्ष्या और अपमान की आग में मैं इतना जल रहा हूँ कि मेरे रोम-रोम से सहस्रों अग्निज्वालायें निकल रही हैं। उनसे मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग जल रहे हैं। तुम्हीं इस अग्नि को शान्त कर सकते हो।

कर्ण—भैया, निराश होने की कोई बात नहीं। इतने शूर होकर भी तुम भीरु और बलहीन पुरुषों जैसी बातें कर रहे हो? मैं केवल एक ही उपाय जानता हूँ—युद्ध, युद्ध, युद्ध। रणभूमि ही वीरता की जननी और पिता है। इसकी गोद में पले

और सोये हुए वीरों की यशःपताका अनन्तकाल तक नभोमण्डल में फहराती रहती है। सच्चे क्षत्रियों की यही सच्ची माता है । इसे छोड़कर किसी और की शरण लेना भीरुता है, महापाप है। दुर्योधन, यह संसार नश्वर है इसकी अनेकानेक विभूतियां भी क्षणस्थायिनी हैं इसलिए काम वे करने चाहिएँ, जिनसे इस शरीर के मिट जाने पर भी नाम न मिटे।

शकुनि—भैया, मैं अङ्गराज से सहमत नहीं। इस समय पांडवों के भाग्याकाश के सब नक्षत्र चमक रहे हैं। वे सब उनके अनुकूल हैं। इससे युद्ध में हम उन्हें हरा नहीं सकते। मैंने एक और उपाय सोचा है।

दुर्योधन—(उत्सुकता से) क्या ?

शकुनि—महाराज युधिष्ठिर को द्यूत खेलने का महाव्यसन है । पर वे उसमें बिलकुल अनाड़ी हैं। यदि किसी तरह तुम उन्हें मेरे साथ पाँसा खेलने को तैयार कर दो तो आपके पौं-बारह हैं। दाँव लगाओ तुम और पांसा फेकूंगा मैं। पांसा फेंकते समय मेरे हाथ में ऐसी सिद्धि होती है कि आन की आन में उलट-पलट हो जाता है। इसके द्वारा युधिष्ठिर का समस्त राज्य मैं आपको दिला सकता हूँ।

दुर्योधन—यह उपाय तो बहुत अच्छा है—भैंस मरे और लाठी न टूटे। *कर्ण भैया, तुम्हारी क्या राय है ?*

कर्ण—मैं तो इसे महाअधम कार्य समझता हूं । इससे मैं सहमत न हूंगा।

शकुनि—अधम कार्य क्यों ? जिस तरह तलवार चलाना क्षत्रियों

का धर्म है इसी तरह द्यूतक्रिया भी तो उन्हीं का कार्य है। फिर, यदि गुड़ खिला कर शत्रु मारा जाय तो विष क्यों दिया जाय ?

दुर्योधन—कर्ण, मामा का उपाय मैं ठीक समझता हूँ। तुम्हें यदि इस में कुछ आपत्ति भी हो तो भी इसे मेरे कहने पर मान जाओ। क्या तुमने नहीं कहा था कि यदि मैं तुम्हें कुम्भीपाक में भी गिराऊँगा तो तुम मीन-मेष न करोगे ?

कर्ण—दुर्योधन, तुम्हारे इस वचन ने मुझे अवाक कर दिया है। मैं द्यूतक्रिया को कुम्भीपाक में गिरना समझता हूँ, पर तुम्हारे लिए मुझे वह भी स्वीकार है।

दुर्योधन—इसके लिए मैं तुम्हारा आजीवन किंकर होकर रहूँगा।

शकुनि—झूठी बात। न कोई किंकर, न कोई स्वामी, तुम दोनों परस्पराधीन हो, एक रथ में जुते हुए दो घोड़े हो।

कर्ण—शकुनि ने बात पते की कही है।

दुर्योधन—और उपमा भी ठीक दी है।

(तीनों बातें करते करते जाते हैं)

———

छठा दृश्य

(स्थान—धृतराष्ट्र का सभाभवन, धृतराष्ट्र सिंहासन पर बैठे हैं। उनके पास विदुर, भीम, द्रोणाचार्य और दूसरे मन्त्री बैठे हैं। सभा के मध्य में एक चौकी पर चौसर की बिसात बिछी हुई है, पास ही गोटियां और पाँसे धरे हैं। उसके एक ओर युधिष्ठिर और दूसरी ओर शकुनि, कर्ण और दुःशासन आदि बैठे हैं।)

शकुनि—महाराज, अब खेल शुरू होना चाहिये। सब उपस्थित जनता उसके लिए उत्सुक बैठी है।

युधिष्ठिर—शकुनिजी, जुआ बहुत ही निन्दित कर्म है। बसे-बसाये घरों को उजाड़ कर यह श्मशान बना देता है। इस से घी के जलते दीपक आन की आन में बुझ जाते हैं और प्रकाश के स्थान में अन्धकार हो जाता है। भाई, तुम्हें क्या मालूम नहीं कि संसार में द्यूत कभी अकेला नहीं रहता ? मद्य, चोरी आदि अनेक व्यसन इसके सहचर हैं। द्यूत जहां जाता है सत्यानास को अपने साथ ले जाता है।

विदुर—बेटा युधिष्ठिर, जब द्यूतकर्म को तुम इतना बुरा मानते हो तो फिर इसे छोड़ते क्यों नहीं ?

युधिष्ठिर—चाचा जी, मैं प्रणबद्ध हूँ। किसी की ललकार को मैं अस्वीकार नहीं कर सकता, फल चाहे कुछ हो।

विदुर—(धृतराष्ट्र से) महाराज, इस कुकार्य को रोकना आपका कर्तव्य है। नहीं तो सर्वनाश हो जायगा।

भीष्म—राजा या राजपरिवार के लोग जिस किसी काम को करते हैं, प्रजाजन उसे आदर्श मानते हैं। यह प्रश्न भाई भाई की हार-जीत का नहीं है धृतराष्ट्र, यह जनता के सामने उच्च या नीच आदर्श रखने का प्रश्न है, राजधर्म यही है कि इसे इसी समय रोका जाय।

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन, नीतिनिपुण विदुर और तुम्हारे दादा, भीष्म जी जो कुछ कह रहे हैं मैं उन से सहमत हूं। इस खेल को अभी बन्द कर दो।

दुर्योधन—पिता जी, यह कैसे हो सकता है! आप की अनुज्ञा से ही तो इतना आयोजन हुआ है। इतनी तैयारी करने के बाद इसे एकदम बंद कर देना मेरे लिये लज्जाप्रद होगा। यदि भाई युधिष्ठिर जी चाहें तो एक दो दाँव लगा कर इसे बन्द कर सकते हैं।

धृतराष्ट्र—हाँ, ठीक कहते हो बेटा, खेल एक दम कैसे बन्द हो सकता है! खेलो बेटा।

विदुर—आज आप कुरुवंश के सर्वनाश का बीज बो रहे हैं महाराज!

शकुनि—सर्वनाश तो होगा ही, पर किसका होगा यह भवितव्यता के अधीन है। भवितव्यता के मार्ग में बाधा करना महापाप है।

भीष्म—(द्रोण से) यह अच्छा नहीं हो रहा है, आचार्य। धृतराष्ट्र दुर्योधन के हाथ में कठपुतली हो रहे हैं, जैसा वह नचाता है वैसे नाचते जाते हैं।

द्रोण—मुझे तो कुरुवंश का भविष्य अन्धकारमय दीखता है।

युधिष्ठिर—तो खेलना पड़ेगा ?

कर्ण—हानि क्या है ? दो चार हाथ खेल कर छोड़ दीजिये।

युधिष्ठिर—एक बार शुरू हो जाने पर खून से पल्ला छुड़ाना असंभव है। जीतने वाला और जीतने की आशा से और हारने वाला हारे हुए धन को लौटा लेने की आशा से इसे बीच में नहीं छोड़ता। इसमें जीत भी हार है। इसका स्वाद मधुर विष की तरह है! यदि आप लोग मुझे इस पापकर्म में धकेलना चाहते हैं तो आपकी इच्छा! मैं इनकार नहीं कर सकता। मेरे साथ चौसर कौन खेलेगा ?

दुर्योधन—दाँव मैं लगाऊंगा और पांसा मामा शकुनि फेंकेंगे।

युधिष्ठिर—पाँसा फेंके एक और दाँव लगाये दूसरा, यह नई बात है।

भीम—इस दाल में कुछ काला काला है भैया, इनके जाल में न फँसना।

(चारों पांडव विचारमग्न हो जाते हैं)

(युधिष्ठिर और शकुनि खेलते हैं। दुर्योधन सब दांव जीतता जाता है और युधिष्ठिर हारता। अन्त में युधिष्ठिर दूसरे भाइयों और अपने आप को हार जाता है।)

दुर्योधन—आपके पास और क्या है जिसे दाँव पर लगायेंगे ?

शकुनि—इनके पास द्रौपदी जो है, उसे क्यों नहीं लगाते ?

विदुर—धिक्कार है दुष्ट, तेरी बुद्धि को। तू मामा के रूप में दुर्योधन का शत्रु है जो इसे सर्वनाश की ओर ले जा रहा है।

दुर्योधन—भैया, मामा ठीक कह रहे हैं। शायद कृष्णा के भाग्य से ही आप अपनी हारी हुई सम्पत्ति लौटा सकें!

भीष्म—(शोक से सिर नीचे कर) अनर्थ, घोर अनर्थ! ऐसे दुर्वचन कहते इसकी जिह्वा के सौ टुकड़े क्यों नहीं हुए!

युधिष्ठिर—मैं द्रौपदी को दाँव पर लगाता हूँ।

शकुनि—(पाँसे फेंक कर) लो यह दाँव भी मैं जीत गया हूँ। (खुशी से उछलता है।)

दुर्योधन—अब द्रौपदी हमारी है।

कर्ण—(खुशी से अपने आप से) द्रौपदी ने भरी सभा में मेरा अपमान किया था। कहती थी मैं सूतपुत्र को न वरूंगी। आज उस अपमान के प्रतिशोध का समय है।

दुर्योधन—(अपने आप) मेरी विपत्ति का कारण यही द्रौपदी है। यदि यह अर्जुन को न वरती तो उसके पिता द्रुपद की सहायता से पांडवों का जो पक्ष इतना प्रबल हो गया है कभी न होता। न पांडव राजसूय यज्ञ करते और न वह सभाभवन बनता, और न मेरा वहां अपमान होता। जब मैं पानी में गिरा था तो भीम ने मेरा उपहास किया था। भीम का बदला द्रौपदी से, द्रौपदी का बदला भीम से और उस अपमान का बदला सब पांडवों से लूंगा। (स्पष्ट) अब ये मेरे दास हैं (ज़ोर से हंसता है) (अपने सारथी प्रतिकामी से) प्रतिकामी, तू इसी समय जाकर द्रौपदी को इस राजसभा में हाज़िर कर? (प्रतिकामी खड़ा होजाता है, चलता नहीं) खड़ा क्यों है? इनसे डरता है—इन दासों से डरता है, अरे मूर्ख—

कर्ण—अरे मूर्ख, दासता की शृङ्खला में बंधे हुए भीम के हाथों में गदा उठाने की, अर्जुन के हाथों में गांडीव पकड़ने की और युधिष्ठिर और उसके दूसरे भाइयों के हाथों में किसी शस्त्र के थामने की शक्ति नहीं है। अब ये महाराज दुर्योधन के प्रणबद्ध दास हैं। और द्रौपदी .. ..

शकुनि—अब ये लोग दास हुए तब उसके दासी होने में क्या कसर रह गई है !

दुर्योधन—(हंसता हुआ) ठीक कहा मामा। (प्रतिकामी को) मूर्ख, यहीं खड़ा है ? गया क्यों नहीं ? शीघ्र जा। (प्रतिकामी जाता है) द्रौपदी !—द्रौपदी मेरी दासी ! (ठठाकर हंसता है।)

(प्रतिकामी लौट आता है)

दुर्योधन—अरे ! तू खाली हाथ लौट आया है ?

प्रतिकामी—महाराज, वे नहीं आतीं।

दुर्योधन—तो उसे बल से पकड़ लाता।

प्रतिकामी—उस सती को स्पर्श करने का मुझ में साहस न था।

दुर्योधन—तो चूड़ियां पहन ले ! दुर्योधन का सारथी इतना भीरु ! दूर हो यहाँ से। (वह हट जाता है।)

दुर्योधन—(दुःशासन से) भाई, बिना तुम्हारे यह काम किसी और से होने का नहीं। तुम्हीं जाओ, और जिस अवस्था में वह हो उसी में पकड़ लाओ।

भीम—(युधिष्ठिर से) भाई साहिब, देख रहे हो क्या हो रहा है ? इस समय हमारा क्या कर्तव्य है ?

युधिष्ठिर—भीम, यह समय शान्ति और धैर्य का है। हमारी

जिह्वाओं पर ताले लगे हैं और हाथ-पांव शृङ्खला से जकड़े हुए हैं! कुछ बोल नहीं सकते, कुछ कर नहीं सकते, ईश्वर रक्षा करेंगे।

(दुःशासन द्रौपदी को बालों से पकड़े हुए सभा में ला पटकता है।)

द्रौपदी—(आर्तनाद करती हुई चारों ओर देखकर ।) इस सभा में भीष्म से योद्धा, विदुर से नीतिज्ञ, आचार्य से महारथी बैठे हैं। उनसे मैं पूछती हूं कि क्या यह सब कुछ उनकी सम्मति से हो रहा है ? (कोई उत्तर नहीं देता) क्या सब के मुँहों पर ताले पड़े हुए हैं। गदा की डींग मारने वाले भीम, कहां है वह गदा ? क्या गांडीवधारी अर्जुन का गांडीव हाथ से नहीं उठता ? (भीम क्रोध से गदा उठाने लगता है।)

अर्जुन—भाई, यह समय धैर्य का है।

भीम—यों क्यों नहीं कहते कि धैर्य के साथ अपमान सहने का है ?

अर्जुन—जिन पांडव-शार्दूलों की ओर ये कौरव-शृगाल नज़र भर कर देखने का भी साहस न कर सकते थे आज उन्हीं की मूछों के बाल नोच रहे हैं, और वे ऐसे जंजीरों से बंधे हैं कि ज़रा भी हिल-जुल नहीं सकते।

नकुल—भैया, यह समय हमारी परीक्षा का है।

द्रौपदी—क्या मैं यह पूछ सकती हूं कि मुझे यहां क्यों लाया गया है ?

दुर्योधन—यह तो तुझे सौ बार कहा जा चुका है कि युधिष्ठिर ने तुझे मेरे पास जुए में हारा है। अब तू मेरी दासी है और मेरी आज्ञा से यहां लाई गई है।

द्रौपदी—महाराज ने पहले अपने आपको हारा था या मुझे ?

दुर्योधन—पहले अपने भाइयों को हारा फिर अपने आपको हारा और फिर मुझे।

द्रौपदी—अब मैं आप लोगों से यह पूछती हूँ कि अपने आपको हार जाने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर को न्याय-मर्यादा के अनुसार यह अधिकार था कि वे मुझे दाँव में लगाते ? (सब चुप रहते है, कोई उत्तर नहीं देता) सब मौन हैं, सब की जिह्वाओं पर जैसे ताले लगे हैं। न्याय के उच्चासन पर आसीन महाराज, आप का धर्म तो न्याय करना है। पुत्रवधू के नाते न सही, एक प्रजा के नाते तो मेरा अधिकार है कि मैं आपसे न्याय की भिक्षा मांगूं। नीतिवेत्ता चाचा जी, आपकी नीति इस समय क्या कहती है ? क्या वह पुस्तकों के पन्ने काले करने के लिये ही है ? द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जी, आप तो ब्राह्मण हैं। बताइये आपके शास्त्र इस विषय में क्या कहते हैं ? सब के सब चुप हैं ! क्या मैं यह समझूं कि इस सभा में मुझे न्याय मिलने की कोई आशा नहीं ?

विकर्ण—इस सभा में बड़े बड़े राजे, महाराजे, नीतिवेत्ता और शास्त्रों के धुरन्धर पंडित बैठे हैं। क्या भाभी के प्रश्न का कोई उत्तर न देगा ! (कुछ ठहरकर) कोई उत्तर दे या न दे, पर जो कुछ मुझे उचित मालूम पड़ता है मैं वह कहता हूँ। शास्त्रकारों ने जुआ खेलना, शिकार खेलना और मदिरापान आदि कई प्रकार के व्यसन बताये हैं। इन में आसक्त मनुष्य धर्माधर्म का विचार नहीं

कर सकता ! इसलिए महाराज युधिष्ठिर मे जुए में हारी हुई द्रौपदी वास्तव में हारी हुई नहीं है।

कर्ण—विकर्ण, अपने छोटे मुँह से इतनी बड़ी बातें क्यों कर रहे हो ? लकड़ी से उत्पन्न होकर उसी को जला देने वाली आग के समान तुम स्वकुलघातक हो। तुम अपने आपको महापंडित समझते हो ? जिस प्रश्न का उत्तर अनेक राजे-महाराजे, पण्डित और विद्वान् नहीं दे सके, तुम उसका उत्तर दे रहे हो ?

दुर्योधन—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, अब तुम राजपुत्र नहीं रहे, मेरे दास हो। अतः राजपुत्रों के वस्त्र और आभूषण उतार दो। (सब पांडव वस्त्र-भूषण उतार देते हैं) दुःशासन, इसी समय द्रौपदी के भी वस्त्र और भूषण उतार लो।

(दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारने लगता है।)

द्रौपदी—(अत्यन्त करुणस्वर से रोती हुई) हे कृष्ण, हे करुणागार, हे दीनबन्धो ! इस अबला की रक्षा करो। नारी-धर्म के रक्षक तुम ही हो। इस समय कौरव मुझे अपमानित करने पर तुले हुए हैं, द्वारिकाधीश, मेरी लज्जा तुम्हारे ही हाथ में है।

गाना

लज्जा मोरी राखो श्यामहरी,
विपद्हारी भक्तन रखवारे भक्तिन विपद परी। लज्जा मोरी० ॥
दुःशासन मतिअंध दुष्ट ने खींच केश पकरी।

लाय सभा के मध्य वसन हरने को कुमति करी। लज्जा मोरी० ॥
धर्मपुत्र, देवेशतनय औ' पवनतनुज सगरी
जीवट हार म्लानमुख बैठे, उनसे कछु न सरी। लज्जा मोरी० ॥
भीष्म, द्रोण, विदुर, नयवेत्ता सब ने मौन धरी।
हठी दुष्ट दुर्योधन से उनकी अब कछु न चरी। लज्जा मोरी० ॥
तुम ही मात-पिता बांधव मम, शरण परी तुमरी।
अब हरि शरण लई हरि, तब तो त्यार से काहि डरी। लज्जा मोरी०

(दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारते उतारते श्रान्त हो जाता है, पर एक के उतरने पर नीचे से दूसरा निकल आता है। अन्त में वह थक कर रह जाता है।)

द्रौपदी—(क्रोध के आवेश में) अधम, नीच, इन अपवित्र हाथों सती के जिन केशों को तूने खींचा है उन्हीं खुले केशों वेणी मैं तेरे ही हृदय-रक्त से सींचकर बांधूंगी। इस के पूरे होने तक ये खुले ही रहेंगे।

भीम—(गदा उठाकर) सब सभासदों के सम्मुख मैं यह प्रण करत कि यदि मैं इस गदा से दुर्योधन की जंघाओं को चूर्ण न दूं, दुःशासन का हृदय चीर कर उसका रक्त पान न और उससे द्रौपदी के केशों को न सींचूं तो ईश्वर सुगति न दें। मेरी यह प्रतिज्ञा अटल है।

दुर्योधन—रहने दो इन गीदड़भभकियों को; भविष्य में जो होगा जायगा। इस समय तो तुम मेरे दास हो।

विदुर—महाराज, अब हमसे अधिक कष्ट नहीं सहा जाता। मह

क्या तेरे भुजदण्ड में अर्जुन से कम बल है? क्या अर्जुन के हाथों में शस्त्र पकड़ने और उन्हें चलाने की शक्ति मुझ से अधिक है? चाहे अधिक हो भी, पर शत्रु को बलवान् समझ कर हृदय में कायरता का भाव भी लाना, क्या कर्ण के लिए लज्जाजनक नहीं? जब शरीर नश्वर है तो फिर इसके लिए कीर्ति को क्यों कलङ्कित किया जाय! मुझे ज्ञात है कि मैं भाग्यहीन हूं। नहीं तो गुरु परशुराम जी से पढ़ी हुई ब्रह्म-विद्या निष्फल क्यों होती? द्रौपदी के स्वयंवर में मारा हुआ मैदान हाथ से क्यों निकल जाता? पर मनुष्यता इसीमें है कि भाग्य से भी संग्राम किया जाय। अनुकूल परिस्थितियों में तो हरेक सफलता प्राप्त कर सकता है, किन्तु सच्चा वीर वह है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलता प्राप्त करे। उस संघर्ष में यदि मृत्यु भी हो जाय तो वह भी अमरता है। यही एक मेरा लक्ष्य है। मैं केवल अर्जुन को ही नीचा दिखाना चाहता हूँ, और किसी से न कुछ लेना है, न देना है। (आवेश से) अर्जुन! अर्जुन!!

(सहसा पद्मावती का प्रवेश)

पद्मावती—नाथ! अर्जुन, अर्जुन, क्या कह रहे थे! क्या अर्जुन आगये हैं?

कर्ण—क्या तुम ने मेरी बातें सुनी हैं?

पद्मावती—और तो कोई बात नहीं सुनी केवल इतना सुना है कि आप अर्जुन को बुला रहे थे।

कर्ण—(चिन्तानिमग्न होकर) क्या कहूँ! अर्जुन से पीछा ही नहीं छूटता। उठते-बैठते, सोते-जागते मेरी आंखों के सामने

वहीं खड़ा नज़र आता है। सोता हूँ तो भी उसका स्वप्न देखता हूँ।

पद्मावती—प्राणाधार, अर्जुन इस समय न मालूम कहां वनों में भटकता फिरता होगा। अब तो उसका विचार छोड़िये। जब वह लौट आयगा तो देखा जायगा। आपने तो अपना जीवन ही.........

कर्ण—निस्सन्देह नष्ट कर दिया है। अपना ही नहीं, तुम्हारा जीवन भी नष्ट कर दिया है। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं तुम्हारा पति होने के योग्य नहीं हूँ। पर मेरा इस में क्या दोष!

पद्मावती—प्राणवल्लभ, आप तो बात को खींच कर कहीं से कहीं ले गये। यह मेरा सौभाग्य है जो आपकी चरणसेविका बनी हूँ। एक वीरक्षत्राणी को वीर पति प्राप्त करने के सिवा संसार में और क्या प्राप्य है!

कर्ण—प्रिये, मैं देख रहा हूँ कि जब कभी मैं निराशालहरी में बहने लगता हूँ, उसी समय तुम अपने स्नेह और श्रद्धारूपी दोनों हाथों को फैलाकर मेरी रक्षा करती हो। इस समय भी तुम्हारे इन वचनों ने मेरे चित्त पर से एक बहुत भारी बोझ उठा दिया है। मेरे इस भाग्यहीन जीवनाकाश में केवल एक तुम ही सौभाग्य की एक प्रकाशमान रेखा हो प्रिये। इसी के भरोसे मैं शत्रुओं से टक्कर लूंगा।

पद्मावती—धन्य हो नाथ, आपकी अर्धाङ्गिनी आपके वीरता-मार्ग में कभी काँटा न बनेगी।

(दुर्योधन और शकुनि आते हैं। पद्मावती जाती है।)

कर्ण—आइये महाराज, आइये शकुनि जी, आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिए।

दुर्योधन—आप से कुछ परामर्श करना था, इसलिये आ गये हैं।

शकुनि—काम्यक वनसे जो समाचार प्रतिदिन आ रहे हैं, वे आपने सुने हैं ?

कर्ण—हररोज वे ही तो सुनता रहता हूँ। सुना है अर्जुन ने महादेव, इन्द्र और दूसरे दिग्पालों से अनेकानेक शस्त्र प्राप्त कर लिये हैं।

दुर्योधन—और भीम के विषय में भी कुछ सुना है ?

कर्ण—मेरे मस्तिष्क में अर्जुन के सिवा और किसी के लिए स्थान नहीं।

दुर्योधन—तुम्हारे लिए तो केवल अर्जुन की ही सत्ता है, पर हमारे लिए एक एक पांडव यमतुल्य हैं। हम ने सुना है—भीम ने कुबेर-सर के रक्षक कई राक्षसों को मार भी दिया था तो भी कुबेर उस पर रुष्ट नहीं हुए। आपने जटासुर राक्षस का नाम सुना होगा। उसे भी भीम ने मार दिया है। इसके अतिरिक्त उसने ऐसे ऐसे शूरता के कार्य किये हैं कि जिनसे उसकी कीर्ति दिग्दिगन्तों में फैल गई है।

शकुनि—महाराज, इसका कोई विचार न करें। राजसत्ता आपके हाथ में है, वे लोग केवल बाहुबल लेकर क्या करेंगे। उन्हें तो अपनी आजीविका के लिए ही बहुत कष्ट उठाने पड़ते होंगे, हम लोगों की ओर ध्यान का उन्हें समय

ही कहां मिलता होगा ! महाराज, आप चिन्ता न करें। पांडव आपसे राज्य लौटा नहीं सकते। उनके वनवास के बारह वर्ष चाहे बीतने को हैं, परन्तु तेरहवें वर्ष उन्होंने गुप्तवास करना है। यदि गुप्तवास में हमें उनका पता लग गया तो उन्हें फिर पूर्ववत् उन्हीं शर्तों पर वनवास और गुप्तवास करना पड़ेगा। इसी चक्र में उनकी सारी आयु समाप्त हो जायगी।

दुर्योधन—मामा, आपकी कल्पना तभी सफल हो सकती है जब हमें उनके गुप्तवास का पता लग जाय।

शकुनि—आप जैसे प्रतापी राजा के लिये यह भी कोई कठिन कार्य है ? आपके दूत देश देशान्तरों में घूम-फिर रहे हैं। उनके लिये पांडवों का पता लगाना कठिन न होगा।

दुर्योधन—इस कल्पना की नींव चाहे खोखली है मामा, तो भी इसी पर अवलंबित होकर आगे का कार्यक्रम निर्धारित होना चाहिये। और चारा भी तो नहीं। (कर्ण से) एक बात मैं और कहने को आया था अंगराज।

कर्ण—क्या ?

दुर्योधन—वह यह कि आप दिग्विजय की यात्रा करें। आपके दिग्विजयी होने से हमारा पक्ष अति प्रबल हो जायगा।

कर्ण—मैं तो जाने को उद्यत हूँ और चिरकाल से मेरी इच्छा भी यही रही है, परन्तु आप लोगों की रक्षा का भार—(रुक जाता है)

दुर्योधन—मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया कर्ण। इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम हमारे रक्षक हो, पर इस समय रक्षा का भार किसी को सौंपने की आवश्यकता नहीं। पांडवों के अभाव में और किसकी शक्ति है कि हमसे टक्करले ?

दादा जी और आचार्य पांडवों के पक्षपाती होने के कारण ज़रा शिथिल रहते हैं परन्तु किसी बाहरी शत्रु का मुकाबला वे पूरे बल से करेंगे।

शकुनि—दिग्विजय में आपको ज़रा भी कष्ट न होगा। अधिकांश नरेश तो आपका नाम ही सुनकर शस्त्र डाल देंगे।

कर्ण—यदि आप लोगों की यही आज्ञा है तो मुझे स्वीकृत है।

दुर्योधन—इसके लिये शीघ्र तैयारी करनी पड़ेगी।

कर्ण—तब चलें ?

शकुनि—हाँ, चलो।

(तीनों जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(स्थान—काम्यक वन। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी बैठे हैं।)

अर्जुन—सुना है कि कर्ण दिग्विजय की यात्रा कर रहा है।

युधिष्ठिर—सुना तो यही है। पाँचाल देश से आये हुए कुछ मनुष्यों के द्वारा यह पता लगा है कि उसने पहले महाराज द्रुपद पर चढ़ाई की थी।

द्रौपदी—उस दुष्ट ने पिता जी पर चढ़ाई की ? आप लोगों की अनुपस्थिति में पिता जी की क्या दशा हुई होगी ?

युधिष्ठिर—महाराज ने कर्ण की अधीनता मान कर उसे कर देना स्वीकार कर लिया है।

द्रौपदी—यह घोर अनर्थ हुआ है।

भीम—भाई साहिब, हमारे इन कष्टों के कारण आप हैं। यदि आप दुर्योधन और कर्ण आदियों को गन्धर्वराज चित्रसेन से न छुड़वाते तो वे इस समय यमपुरी की सैर करते होते। (अपने आप, ऊँचे स्वर से) आये थे राज्य का आडंबर दिखा कर हमें जलाने! वहीं को मुँह की खानी पड़ी।

युधिष्ठिर—उस समय परिस्थिति ही कुछ और थी भीम। घर में चाहे कोई लड़ें झगड़ें, पर बाहरी शत्रु का मुकाबला सब को मिल कर करना चाहिए—यह नीति है। इसी का हम ने अनुसरण किया था।

भीम—महाराज के हृदय में नीति, दया और धर्म के भावों ने मानो डेरा डाला हुआ है। अत्याचारी के अत्याचारों को क्षमा कर देना इन की दया है, और यही इन का धर्म है।

अर्जुन—दादा, महाराज के विषय में ऐसे वाक्य न कहने चाहिएँ।

द्रौपदी—अर्जुन, क्या अब ही भूल गये उन आततायियों के अत्याचारों को? देख रहे हो इन खुले केशों को? जब तक ये खुले हैं तब तक तुम्हें मैं इन्हें न भूलने दूंगी।

युधिष्ठिर—कृष्णे, हम लोगों को सब कुछ स्मरण है, उन अत्याचारों का बदला लेने के लिए केवल अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा है।

अर्जुन—जिकर हो रहा था कर्ण की दिग्विजययात्रा का, कुछ और पता भी लगा है?

दादा भी और आचार्य पांडवों के पक्षपाती होने कारण ज़रा शिथिल रहते हैं परन्तु किसी बाहरी शत्रु का मुकाबला वे पूरे बल से करेंगे।

शकुनि—दिग्विजय में आपको ज़रा भी कष्ट न होगा। अधिकांश नरेश तो आपका नाम ही सुनकर शस्त्र डाल देंगे।

कर्ण—यदि आप लोगों की यही आज्ञा है तो मुझे स्वीकृत है।

दुर्योधन—इसके लिये शीघ्र तैयारी करली पड़ेगी।

कर्ण—तब चलें ?

शकुनि—हां, चलो।

(तीनों जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(स्थान—काम्यक वन। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी बैठे हैं।)

अर्जुन—सुना है कि कर्ण दिग्विजय की यात्रा कर रहा है।

युधिष्ठिर—सुना तो यही है। पाँचाल देश से आये हुए कुछ मनुष्यों के द्वारा यह पता लगा है कि उसने पहले महाराज द्रुपद पर चढ़ाई की थी।

द्रौपदी—उस दुष्ट ने पिता जी पर चढ़ाई की ? आप लोगों की अनुपस्थिति में पिता जी की क्या दशा हुई होगी ?

युधिष्ठिर—महाराज ने कर्ण की अधीनता मान कर उसे कर देना स्वीकार कर लिया है।



द्रौपदी—यह घोर अनर्थ हुआ है।

भीम—भाई साहिब, हमारे इन कष्टों के कारण आप हैं। यदि आप दुर्योधन और कर्ण आदियों को गन्धर्वराज चित्रसेन से न छुड़वाते तो वे इस समय यमपुरी की सैर करते होते। (अपने आप, ऊँचे स्वर से) आये थे राज्य का आडंबर दिखा कर हमें जलाने ! बच्चों को मुँह की खानी पड़ी।

युधिष्ठिर—उस समय परिस्थिति ही कुछ और थी भीम। घर में चाहे कोई लड़ें झगड़ें, पर बाहरी शत्रु का मुकाबला सब को मिल कर करना चाहिए—यह नीति है। इसी का हम ने अनुसरण किया था।

भीम—महाराज के हृदय में नीति, दया और धर्म के भावों ने मानो डेरा डाला हुआ है। अत्याचारी के अत्याचारों को क्षमा कर देना इन की दया है, और यही इन का धर्म है।

अर्जुन—दादा, महाराज के विषय में ऐसे वाक्य न कहने चाहिएँ।

द्रौपदी—अर्जुन, क्या अब ही भूल गये उन आततायियों के अत्याचारों को ? देख रहे हो इन खुले केशों को ? जब तक ये खुले हैं तब तक तुम्हें मैं इन्हें न भूलने दूंगी।

युधिष्ठिर—कृष्णे, हम लोगों को सब कुछ स्मरण है, उन अत्याचारों का बदला लेने के लिए केवल अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा है।

अर्जुन—जिकर हो रहा था कर्ण की दिग्विजययात्रा का, कुछ ...कुछ भी लगा है ?

उसमें अस्त्र-शस्त्रोंकी अग्नि में कौरवों की आहु-तियां डाल डाल कर अन्त में दुर्योधन की पूर्णाहुति देंगे।

युधिष्ठिर—अज्ञातवास के सम्बन्ध में भी इसी समय निश्चय कर लेना चाहिये कि वह समय कहां बिताया जाय। तुम लोग सब देशों और उन के राजाओं को जानते हो। उनमें से तुम्हें कौन देश पसन्द है ?

अर्जुन—महाराज, मेरे विचार में तो विराट् नगर में ही रहना उत्तम होगा। वहां के राजा बड़े धर्मात्मा और न्यायप्रिय हैं। उन्हीं की सेवा में हमारा एक वर्ष बड़े आनन्द से कट सकेगा।

भीम—मैं इससे सहमत हूँ।

नकुल, सहदेव—हमारी भी यही राय है।

युधिष्ठिर—तो निश्चय हुआ ?

सब—हां, पक्का निश्चय हुआ।

युधिष्ठिर—अब इस स्थान को छोड़ देना चाहिए। यदि कौरवों को हमारा पता लग गया तो वे दुष्ट हमें तंग करेंगे।

भीम—ठीक है। इस लिए अभी चलना उचित है।

(सब चलते हैं।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—दुर्योधन की सभा। दुर्योधन सिंहासन पर है। उसके आस पास भीष्म, द्रोण, विदुर, कर्ण और दूसरे नरेश और सभासद बैठे हैं।)

एक सभासद—आज हम लोग सब सभासदों की ओर से महाराज दुर्योधन को राजसूय-यज्ञ की सफलता पर बधाई देते हैं। महाराज, आप का यज्ञ युधिष्ठिर के यज्ञ से कहीं बढ़ चढ़ कर हुआ है।

दूसरा सभासद—महाराज, यह वह यज्ञ है जिसे सम्पादन कर ययाति, नहुष, मान्धाता और भरत समान नरेश आज भी स्वर्गसुख भोग रहे हैं। परन्तु उनमें से एक भी इसे उस सर्वाङ्गपूर्णता से नहीं कर सका जिससे आपने किया है।

शकुनि—जिस महाराज दुर्योधन की राजसभा को कर्ण से महारथी, भीष्म जैसे वीराग्रणी, आचार्य से शास्त्रशस्त्रवेत्ता ब्राह्मण और विदुर जी जैसे राजनीतिज्ञ सुशोभित करते हों, उसके यज्ञ की संपूर्ति में किसी को कुछ सन्देह हो सकता है ?

कर्ण—राजन, हम सब को बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आप का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ है। महासमर में विजय पाकर जब आप फिर ऐसा यज्ञ करेंगे तब हम आपका और भी अधिक अभिनन्दन और सत्कार करेंगे।

दुर्योधन—अंगराज, आप लोगों की सहायता हुई तो मुझे उसमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

कर्ण—महाराज, आज मैं फिर वह प्रतिज्ञा दोहराता हूँ कि जब तक मैं अर्जुन का संहार न कर लूंगा तब तक दूसरे से अपने पैर नहीं धुलवाऊंगा और किसी याचक को विमुख न लौटाऊंगा, उसे शरीर तक देने में संकोच न करूंगा।

सब सभासद—अंगराज कर्ण की जय !

विदुर—हररोज़ प्रतिज्ञा ही करते रहियेगा।

भीष्म—जो बादल गरजते हैं वे बरसते नहीं।

कर्ण—पितामह, मैं देर से देख रहा हूँ कि बात बात पर आप लोग मेरी निन्दा करते रहते हैं। मालूम होता है मेरी उन्नति आप को पसन्द नहीं।

भीष्म—कर्ण, तुम लोगों की चाटूक्तियों ने दुर्योधन को आसमान पर चढ़ा रक्खा है। इसका परिणाम यह होगा कि वह जितना ऊंचा चढ़ा है उतना ही नीचतम गर्त में गिरेगा, क्योंकि तुम लोगों से बनाया हुआ यह प्रासाद तुम्हारी ही चाटूक्तियों की निस्सार नींव पर खड़ा है।

शकुनि—दादा, हम लोग तो उसे कीर्ति और यश का मार्ग दिखा रहे हैं।

भीष्म—नहीं, अन्ध-कूप में गिरा रहे हो। शकुनि, मामा होकर भी तुम उस से न मालूम किस वैर का बदला ले रहे हो। उसकी प्रवृत्ति सदा कुमार्ग की ओर ही बढ़ा रहे हो।

कर्ण—दादा, यह सोचना आपकी भूल है।

भीष्म—मेरी भूल है कर्ण ! कान रखते भी तुम लोग बहरे हो। आंखें रहते भी तुम लोग अन्धे हो। पर मेरे कान भी हैं और आंखें भी। मैं सब कुछ सुन रहा हूँ, देख रहा हूँ। शुरू से ही

परीक्षा का कोई ऐसा विकट समय आया तो उसमेंसे उत्तीर्ण हो कर उन लोगों को बता दूंगा कि कर्ण का दान-प्रण वस्तुतः सचा है।

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—महाराज, द्वार पर खड़ा एक मनुष्य प्रवेश चाहता है।

कर्ण—वह कौन है ?

दौवारिक—महाराज, वेषभूषा से तो ब्राह्मण मालूम होता है।

कर्ण—उन्हें भीतर ले आओ।

(दौवारिक ब्राह्मण को ले आता है)

कर्ण—(उठकर) ब्राह्मण देवता, प्रणाम।

ब्राह्मण—चिरायु हो, अंगराज।

कर्ण—देवता, कहिये किस लिए आगमन हुआ है ? यह समय दान का नहीं है—मेरे दान का समय है—सूर्योदय, जब मैं सूर्यदेव को अर्घ्य देता हूँ। तो भी आप मेरे द्वार पर कुछ आशा लिए आए हैं, अतः निराश न लौटेंगे।

ब्राह्मण—अंगराज, मैं कुछ लेने को नहीं आया हूँ—देने को आया हूँ।

कर्ण—कर्ण के पास ब्राह्मणों के दिये आशीर्वाद और ईश्वर से दी हुई और बाहुबल से सञ्चित धनराशि की कोई कमी नहीं। आप और क्या देने आये हैं देवता ?

ब्राह्मण—चेतावनी।

कर्ण—चेतानी ! चेतावनी कैसी ?

ब्राह्मण—सर्वनाश से बचने की।

कर्ण—तुम भूलते हो ब्राह्मण ! ...

का रूप धार कर तुम से कुण्डल और कवच का दान लेने का उस से वचन दिया है।

कर्ण – तो क्या इन्द्र ब्राह्मणवेश में आकर मुझ से कुण्डल और कवच मांगेगा ?

ब्राह्मण—हाँ।

कर्ण—ब्राह्मण देवता, वह दान मुझे देना ही पड़ेगा। कर्ण का प्रण है कि उस के द्वार से कोई भिक्षुक खाली हाथ न जायेगा। यही तो मेरी परीक्षा समय है। विप्रवर, यही समय है भीष्म, द्रोण और विदुर को बताने का कि मेरा प्रण ढोंग नहीं है।

ब्राह्मण—फिर तुम अर्जुन को कैसे मारोगे ?

कर्ण—इन दो भुजाओं और उन में पकड़े हुए धनुष से।

ब्राह्मण—भूल रहे हो कर्ण।

कर्ण—यह चाहे भूल हो-पर इस भूल से ही अक्षय कीर्ति के मार्ग को जाऊंगा (*कीर्तिर्यस्य स जीवति*)

ब्राह्मण—तुम मेरी बात नहीं मानोगे ?

कर्ण—कभी नहीं।

ब्राह्मण—यदि तुम्हारी यही धारणा है, तो एक और बात मानो।

कर्ण—वह क्या ?

ब्राह्मण—कुण्डल और कवच लेने के पश्चात् इन्द्र तुम से अवश्य प्रसन्न होंगे। वे वर मांगने को कहेंगे—उस समय तुम उन की एक पुरुष-घातिनी शक्ति मांग लेना और उसको अर्जुन के वध में काम लाना।

कर्ण—यह मुझे स्वीकार है। पर ब्राह्मण देवता, आप हैं कौन—मुझे

आप से यह पूछना तो भूल ही गया। जिस संसार में मेरा कोई नहीं उस में मेरे सच्चे हितकर तुम कौन हो ?

ब्राह्मण—यह बताने की आवश्यकता नहीं।

(सहसा अन्तर्धान होजाता है),

(पद्मावती का प्रवेश)

पद्मावती—नाथ, यह कौन था ?

कर्ण—तुमने उसकी बातें सुनी हैं ?

पद्मावती—कुछ सुनी हैं और कुछ नहीं।

कर्ण—सुनी कौन कौन सी हैं ?

पद्मावती—यह सुना है कि वह कह रहा था कि आप पर एक विपत्ति आ रही है।

कर्ण—विपत्तियां तो आने के लिए ही होती हैं, पर जो उनका मुकाबला दृढ़ता और धैर्य से करता है उसके लिए ये विपत्तियां नहीं रहतीं।

पद्मावती-तो क्या आप ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र को कवच और कुण्डल दे देंगे ?

कर्ण—तो क्या तुम ने इन्द्र का नाम भी सुन लिया है ?

पद्मावती—इस समय तो अच्छी तरह नहीं सुना, परन्तु इसका मुझे पहले ही ज्ञान था।

कर्ण—सो कैसे ?

पद्मावती—एक दो दिन की बात है—मैं सोई पड़ी थी। समय लगभग आधी रात होगा। सहसा मेरे कमरे में प्रकाश हुआ और एक दिव्यरूप पुरुष मुझे सम्बोधन कर कहने लगा—भद्रे ! मैं तुम्हे एक चेतावनी देने आया हूँ। मैंने हाथ जोड़ कर पूछा—चेतावनी कैसी देवता ? उसने कहा—

अर्जुनसखा इन्द्र तुम्हारे पति से जन्म-जात कुण्डल और कवच का दान मांगेगा। यदि वे उन्हें दे देंगे तब ही उनकी मृत्यु अर्जुन के हाथों से हो सकेगी—अन्यथा वे अजेय हैं।

कर्ण—तुमने उनका नाम पूछा ?

पद्मावती—मैं नाम पूछती ही रह गई कि वे अन्तर्द्धान हो गये। इतने में देव-मन्दिर की शंख-ध्वनि से मेरी आँख खुल गई।

कर्ण—मेरे साथ भी यही घटना हुई है। मैं उस ब्राह्मण का नाम पूछता रह गया कि वह अन्तर्द्धान होगया। प्रिये! तुम ने आज से पहले तो इस घटना का ज़िकर किसीसे नहीं किया ?

पद्मावती—कई बार बात कहने को जिह्वा पर आई, पर और कामों में लग जाने से उसे कह न पाई। दूसरे, स्वप्न की बात पर मुझे विश्वास भी नहीं था, अतः उधर बहुत ध्यान नहीं दिया।

कर्ण—सत्य कहती हो प्रिये! आखिर स्वप्न की बात थी, उस पर विश्वास क्यों कर हो सके!

पद्मावती—परन्तु अब तो स्वप्न की बात नहीं रही, प्राणेश्वर! आज की घटना का उस स्वप्न की घटना से जब मिलान करती हूँ तो भय के मारे मेरा शरीर थर्राने लगता है। प्राणवल्लभ, वास्तविक भिक्षुक के निराश लौटने से प्रतिज्ञाभङ्ग का दोष हो सकता है किन्तु कपटी और धोखेबाज़ याचक की इच्छा को पूर्ण करना ...

पाप है। इसलिए जब आपके पास वह ब्राह्मण आये तो उसे खरी-खरी सुना देना। अपना सा मुँह लेकर लौट जायगा।

कर्ण—तुम कैसी विचित्र बातें करती हो प्रिये ! तुम कर्ण की पत्नी हो, क्या तुम्हें ऐसे वचन शोभा देते हैं ? मेरा यह प्रण है कि जो हाथ मेरे सामने पसारा जाय वह कभी खाली न जाय, वह हाथ चाहे इन्द्र का हो, चाहे किसी भिक्षुक का हो।

पद्मावती—नाथ ! आपके वचन तो ठीक हैं, पर मेरा मन उन्हें नहीं मानता।

कर्ण—सत्याग्रह से मनाओ, मान जायगा।

(सत्यसेन का प्रवेश)

सत्यसेन—माता जी, मृगया के लिए जा रहा हूँ। मेरा धनुष और तूणीर कहाँ हैं ?

पद्मावती—चलो बेटा, देती हूँ। (पुत्र को साथ लेकर जाती है)

कर्ण—विचित्र समस्या है। इन्द्र को—नहीं नहीं, ब्राह्मण को—यदि लौटा देता हूँ तो प्रण-भङ्ग होता है और यदि कुण्डल और कवच दे देता हूँ तो अपने पैरों पर आप ही कुठारप्रहार करता हूँ। मेरे लिए, मेरे क्या, सब शूर पुरुषों के लिए ऐसी समस्या को हल करने का एक ही उपाय है:—

प्राण जायँ पर वचन न जाई।

कुण्डल और कवच विद्यमान हैं तब तक उन पर किसी शस्त्र का असर नहीं हो सकता। पर बेटी, तुम उन्हें यह क्यों नहीं देती कि इन्द्र को दान देने से इनकार कर दें ?

पद्मावती—कह चुकी, पर वे नहीं मानते। कहते हैं मैं कदापि प्रणभंग न करूंगा, इससे चाहे मेरा शरीर ही चला जाय।

गांधारी—तो इसमें मैं क्या कर सकती हूँ ?

पद्मावती—माता जी, आप उन्हें समझा सकती हैं। वे आपकी बात कभी न टालेंगे।

गांधारी—बेटी, उसके अधिक समीप तुम हो या मैं ? तुम पत्नी हो और मैं वस्तुतः कुछ नहीं। फिर, कर्ण महाहठी है। जिस बात पर वह अड़ बैठता है उसे कभी नहीं छोड़ता। तुम जानती हो इन सब झमेलों का मूल है राज्य। तुम कर्ण को क्यों नहीं समझाती कि दुर्योधन को समझा बुझा कर पांडवों को गुज़ारे के लिये—केवल गुज़ारे के लिये ही राज्य का कुछ भाग दिलवादे ? फिर सब झमेले स्वयं मिट जायेंगे।

पद्मावती—माता जी, कई बार प्रार्थना की, हाथ जोड़े, पांव पड़ी और स्त्रियों के अमोघ अस्त्र—अश्रुधारा को भी काम में लाई, पर वे टस से मस नहीं होते। उनके दिमाग में दो प्रण ही समा रहे हैं—वेही दो प्रण—अर्जुन के वध का प्रण और दान का प्रण।

गांधारी—तब तो विधाता का ही आश्रय है।

पद्मावती—आप महाराज दुर्योधन के द्वारा उन्हें सुमार्ग पर क्यों नहीं लातीं ?

गांधारी—दुर्योधन स्वयं उसी दलदल में फंसा हुआ है। वास्तव में कर्ण और दुर्योधन एक ही शरीर के दो अंग हैं। उनके स्वभाव, हृदय, वचन और कर्म सब एक हैं। मैं तो उस दिन को कोसती रहती हूँ बेटी, जिस दिन कर्ण की दुर्योधन से घनिष्ठता हुई थी। अब तो सिवा ईश्वर के और कोई सहारा नहीं।

पद्मावती—मुझे भी यही भान हो रहा है। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

गांधारी—हां, जाओ। तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे बेटी।

पद्मावती—रानी का यह आशीर्वाद ही मेरे बुझते हुए जीवनप्रदीप में स्नेहप्रदान करता रहेगा। (जाती है)

पटाक्षेप

छठा दृश्य

(स्थान—नदी का तट, कर्ण सूर्याभिमुख होकर बैठा है। पास कुछ दूरी पर कोशाध्यक्ष बैठा है।)

कर्ण—मेरे जीवन का क्षण क्षण वाद-विवाद और लड़ाई-झगड़े आदि में व्यतीत हो रहा है। ईर्ष्या, विषाद, द्वेष, मत्सर आदि चारों ओर से मुझे घेरे रहते हैं। ...ही थोड़ा समय है जिस में मुझे परमानन्द

मिलता है। वे मेरे जीवन के उत्कृष्टतम भाग हैं। भिक्षुक को भिक्षा देकर मेरा मन बल्लियों उछलता है। जिस दिन किसी भिक्षुक को कुछ देने का अवसर नहीं मिलता, वह सारा दिन उदासीनता और अनुत्साहता में कटता है।

(एक भिक्षुक आता है।)

भिक्षुक—दानवीर कर्ण की जय।

कर्ण—आइये महाराज, आपने बड़ी कृपा की। कहिये क्या आज्ञा है?

भिक्षुक—अंगराज, मैं एक अकिञ्चिन ब्राह्मण हूँ। घर में एक वृद्धा माता, गृहिणी और षोडशी कन्या के सिवा और कोई नहीं। कन्या विवाहयोग्य होगई है, पर पास एक कौड़ी भी नहीं कि उसका विवाह कर सकूं।

कर्ण—(कोशाध्यक्ष से) कोशाध्यक्ष जी, यह ब्राह्मण देवता जो कुछ मांगे दे दीजिये।

कोशाध्यक्ष—(ब्राह्मण से) चलिये महाराज! (ब्राह्मण को साथ लेकर जाता है।)

कर्ण—आज का दिन खाली तो न गया।

(कुछ यात्रियों का प्रवेश)

सब यात्री—दानवीर कर्ण की जय!

कर्ण—आइये महाराज! आप लोग कहां से आ रहे हैं?

एक यात्री—महाराज हम लोग पांचाल देश से आरहे हैं। हमारी इच्छा भारतभर के तीर्थस्थानों की यात्रा की है। किन्तु

द्वार से निराश होकर न कोई लौटा है और न आगे को लौटेगा। ऐसे समय जब मैं सूर्याभिमुख होकर दान देने को बैठता हूँ तो उस समय यदि कोई मेरा शरीर भी मांगे तो उसे भी देने में संकोच नहीं करता।

ब्राह्मण—धन्य हो अंगराज! शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र समान आप-जैसे प्रजा-पालक नरेश भारत में इने गिने ही हुए हैं।

कर्ण—उन महापुरुषों के साथ मेरी तुलना कहां! कहां उत्तमांग का भूषण मुकुट और कहां पाँव का जूता!

महाराज, आप आज्ञा क्यों नहीं करते? उसके पालन करने को मैं अत्यन्त उत्सुक हूं।

ब्राह्मण—महाराज, यदि आप दान देना ही चाहते हैं, तो अपने कुण्डल और कवच दीजिये।

कर्ण—(कुछ विस्मित होकर) ब्राह्मण देवता, कुण्डल और कवच मांग कर आपने मुझे विषम समस्या में डाल दिया है। संसार की और सब वस्तुएँ मैं देने को उद्यत हूँ, पर कुण्डल और कवच—

ब्राह्मण—न दीजिए यदि आप देना नहीं चाहते।

कर्ण—क्या आप रुष्ट हो गये हैं? मुझे आप का रोष अभीष्ट नहीं। किसी ब्राह्मण को रोषित कर निराश लौटाने से सात पीढ़ियां नरक-गामिनी होती हैं, परन्तु यदि वह ब्राह्मण स्वयं देवराज इन्द्र हो तब तो अधोगति का कोई ठिकाना नहीं।

ब्राह्मण—क्या मुझे पहचान लिया, अंगराज? शायद आपको भगवान् सूर्य ने सचेत कर दिया है।

कर्ण—वे भगवान् सूर्य थे जिन्होंने ब्राह्मणवेश में मुझे साक्षात् और मेरी स्त्री को स्वप्न में दर्शन दिये थे ?

ब्राह्मण—अवश्य ।

कर्ण—सुरेश, मैं कुण्डल और कवच तो उतार देता हूँ, पर उनके काटने से मैं कुरूप हो जाऊँगा, साथ ही शरीर में घाव हो जायेंगे ।

इन्द्र—मैं तुम्हें वर देता हूँ कि इनके काटने से न तुम कुरूप होओगे और न तुम्हारे शरीर पर घाव होंगे ।

कर्ण—आपकी महती कृपा । (कुंडल और कवच काट कर देता है । इन्द्र उन्हें लेकर चलने को उद्यत होता है ।) देवराज, मैंने तो आप को कुण्डल और कवच दे दिये, पर आप भी मुझे एक वस्तु प्रदान करेंगे ?

इन्द्र—मांगो क्या मांगते हो ?

कर्ण—मुझे अपनी अमोघशक्ति दीजिये ।

इन्द्र—कर्ण, तुमने शक्ति मांगकर मुझे बड़े संकट में डाल दिया है ।

कर्ण—उतने अधिक संकट में नहीं जितने में कुण्डल और कवच मांगकर आपने मुझे डाला था ।

इन्द्र—कर्ण, मैंने समझ लिया है कि जिस की रक्षा के लिए मैंने कुण्डल और कवच लिये हैं उसी के वध के लिए तुम यह शक्ति मांग रहे हो । पर तुम्हें यह स्मरण रहे कि अर्जुन के रक्षक स्वयं भगवान् कृष्ण हैं । जिस के रक्षक कृष्ण हों उसे मारने वाला संसार में न कोई हुआ है और न होगा ।

कर्ण—भगवान् अर्जुन की रक्षा किया करें, [illegible] भी

भय नहीं। सच्चा शूर वही होता है देवराज, जो अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी हतोत्साह नहीं होता।

इन्द्र—कर्ण, मैं तुम्हारी युद्ध-वीरता और दानवीरता से अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी अमोघशक्ति प्रदान करता हूं। पर एक बात है। यद्यपि यह शक्ति मेरे हाथ से छूटने पर सैकड़ों शत्रुओं को मार कर मेरे हाथ में आ जाती है तथापि तुम्हारे हाथ से छूटी हुई यह केवल एक ही शत्रु को मारकर मेरे पास लौट आयेगी।

कर्ण—मुझे यह स्वीकार है। संसार में मेरा केवल एक ही शत्रु है। (इन्द्र शक्ति देकर अन्तर्द्धान हो जाता है।)

कर्ण—(अपने आप) कुण्डलों से मेरे मुख की शोभा थी, कवच से शरीर की शोभा थी। उनसे मेरा शरीर अभेद्य था। वे दोनों चले गये। अब उनका क्या शोक! जो चले गये उनका क्या शोक! वे तो गये, पर उनके स्थान में जो वस्तु मैंने पाई है, उसकी मुझे आवश्यकता थी--अत्यन्त आवश्यकता थी। कुण्डलों और कवच से मेरे शरीर की रक्षा तो हो सकती, पर मेरे पास अर्जुन को मारने का कोई साधन न था। अर्जुनके वध का साधन यह शक्ति मुझे अब मिली है। कुण्डल-कवच के जाने की मुझे कोई चिन्ता नहीं, पर अर्जुनवध के लिए क्षमता प्राप्त करने का मुझे असीम हर्ष हुआ है। (चिन्तित होकर) पर......देवराज कहते थे- अर्जुन के रक्षक स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। (आवेश से) कृष्ण हैं तो हुआ करें—समय पर देखा जायगा। (जाता है।)

सातवां दृश्य

(स्थान—धृतराष्ट्र की सभा। धृतराष्ट्र और उसके आसपास भीष्म, द्रोण, विदुर, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि और कुछ और सभासद बैठे हैं।)

विदुर—महाराज, पांडवकुमारों ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारह बरसों के वनवास और एक बरस के अज्ञातवास की अवधि पूरी करदी है। अब वे आने वाले होंगे। उन्हें कोई न कोई ठिकाना देने का विचार अब ही कर लेना चाहिए।

कर्ण—वे जल्दी ठिकाने लगाये जायेंगे मन्त्री जी, आप ज़रा चिन्ता न करें।

भीष्म—कर्ण, बढ़ बढ़ कर ऐसी बातें करना अच्छा नहीं। तुम लोग उन्हें ठिकाने लगाओगे या वे तुम्हें लगायेंगे—यह तो समय आने पर मालूम होगा। यह समय संयमपूर्वक विचार कर विदुर जी की समस्या को हल करने का है, ऐसी वाचालता का नहीं।

द्रोण—युद्धक्षेत्र से भागने और वाचालता में अंगराज कर्ण की समता कोई नहीं कर सकता।

शकुनि—आचार्य, यशस्वी कर्ण को ऐसे असत्य वचन कह कर क्यों उत्तेजना देते हैं?

द्रोण—शकुनि, वह घटना इतनी जल्दी भूल गये जब तुम्हारे यशस्वी कर्ण विराट्‌देश में अर्जुन के तीक्ष्ण तीरों से घायल होकर युद्धभूमि छोड़ भाग गये थे?

दुर्योधन—युद्धानल में शरीर की निष्फल आहुति देना बुद्धिमानों

का काम नहीं। समय देखकर कार्य सम्पादन करना ही नीतिज्ञता है।

विदुर—मैंने जो समस्या आपके सामने रखी थी, उस पर अभी तक विचार नहीं हुआ।

दुर्योधन—उस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं। पांडव अज्ञातवास के समय की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही प्रकट हो गये हैं, इसलिए उन्हें प्रथा के अनुसार पुनः पूर्ववत् वनवास और अज्ञातवास करना पड़ेगा।

भीष्म—दुर्योधन, तुम भूल रहे हो। पांडवों के अज्ञातवास का समय उनके प्रकट होने से बहुत पहले समाप्त हो चुका था। काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ग्रह, नक्षत्र, ऋतु और वर्ष—ये सब कालचक्र (वर्ष) के छोटे और बड़े अंश हैं। इनके अनुसार समय के बढ़ने घटने और नक्षत्र-मण्डलकी गति के कुछ व्यतिक्रम से हर पांचवें वर्ष दो मास अधिमास (मलमास) के बढ़ते हैं। उन्हीं मलमासों को जोड़कर आज तेरह वर्ष पूरे होकर पांच मास और छः दिन अधिक हो गये हैं। अतः पांडवों की प्रतिज्ञा पूरी होने में कोई सन्देह नहीं।

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—महाराज, वासुदेव श्रीकृष्ण आरहे हैं।

धृतराष्ट्र—(विस्मय से) यशोदानन्दन आ रहे हैं?

भीष्म—केशव आ रहे हैं?

द्रोण—गोपाल कृष्ण आरहे हैं?

विदुर—हम लोगों के सौभाग्य जो घर बैठे ही वासुदेव के दर्शन होंगे !

कर्ण—(दुर्योधन के कान में) पांडवों का दूत बन कर आया होगा।

दुर्योधन—(कर्ण के कान में) इसका और काम ही क्या है !

(कृष्ण जी का प्रवेश, सब सभासद खड़े हो जाते हैं और प्रणाम करते हैं।)

धृतराष्ट्र—यादवेश, आप के चरणापात से हमारा भवन पवित्र हो गया है। कहिये आप और आपके बन्धु और मेरे भतीजे पांडव सकुशल हैं न ?

श्रीकृष्ण—आप की कृपा से हम सब लोग सकुशल हैं। गांगेय भीष्म, आचार्य द्रोण, महात्मना विदुर जी, आप लोग तो अच्छे हैं ?

भीष्म—गोपाल, जिनके सिर पर आपका करुणाहस्त हो वे अच्छे क्यों न होंगे !

श्रीकृष्ण—महाराज धृतराष्ट्र, मुझे एक आवश्यक कार्य के लिये आपके पास आना पड़ा है। आप के भतीजे पांडुकुमार वनवास और अज्ञातवास की अवधि समाप्त कर विराट् राजा के यहां ठहरे हुए हैं। वहां वे आपके न्याय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कर्ण—न्याय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, या युद्ध के सामान और सेना जुटा रहे हैं ?

श्रीकृष्ण—दोनों काम कर रहे हैं। न्याय न होगा तो युद्ध अनिवार्य है। न्याय की दृष्टि से तो वे समूचे राज्य के अधिकारी हैं, परन्तु रार मिटाने के हेतु वे राज्य का वही

भाग मांगते हैं जिससे उन्हें कपट-द्यूत से हरा कर वंचित किया गया था।

शकुनि—कपट-द्यूत कैसा! महाराज को पांसा खेलने की लत थी, इसलिए हम से साधारण सा निमन्त्रण पाते ही ये यहां आ धमके। न पांसों पर किसी का अधिकार है और न भाग्य पर, ये दोनों उनके विपरीत थे। हमारा क्या दोष!

श्रीकृष्ण—मैं गुज़री हुई बातों के झमेले में नहीं पड़ना चाहता राजन्! कौरवों और पांडवों को चाहिये कि गुज़री बातों को भूल कर अब से शुद्ध हृदय से भाई भाई का सा आचरण करें।

कर्ण—कृष्ण जी, आप तो कहते थे कि अकेला अर्जुन ही समस्त कौरवदल के संहार की क्षमता रखता है, फिर हम लोगों की शरण की क्या आवश्यकता?

श्रीकृष्ण—यह सब कुछ मैं तुम लोगों के ही हित के लिये कर रहा हूँ कर्ण! दुर्योधन, तुम क्यों चुप बैठे हो? तुम्हारे ही 'हां' या 'नहीं' पर असंख्य जीवों के जीवन अवलम्बित हैं। तुम चाहो तो असंख्य नारियों को वैधव्य से और लाखों बच्चों को अनाथ हो जाने से बचा सकते हो।

दुर्योधन—यदि न चाहूँ तो?

श्रीकृष्ण—यदि न चाहो तो ऐसा कराल युद्ध होगा, जिसमें प्रवाहित रुधिर-सरिता की बाढ़ में सारा कुरुवंश बह जायगा। यही समय है निर्णय करने का कि तुम्हारा नाम संसार

के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा हो या उसके पन्ने तुम्हारी कलुषित करतूतों से काले हुए हों।

दुर्योधन—कृष्ण, हमारे ही अतिथि हो कर हमारा ही अपमान करना क्या उचित है ?

शकुनि—इसे कहते हैं गोद में बैठकर डाढ़ी के बाल नोचना।

श्रीकृष्ण—महाराज, आप अपने कुमार्गगामी पुत्र को संयम में नहीं रख सकते क्या ?

धृतराष्ट्र—वासुदेव, यदि मेरा इस पर कुछ भी अधिकार होता तो मामला यहां तक पहुँचता ही क्यों ! कब तक सिमट न जाता ?

श्रीकृष्ण—राजन्, अब यत्न करो इसे समेटने का।

कर्ण—जब दोनों पक्षों में से एक पक्ष मिट जायगा तो मामला आप ही आप सिमट जायगा।

भीष्म—कुरुवंशरूपी वृक्ष की जड़ों को कर्ण और शकुनिरूपी मूसे ऐसे काट रहे हैं कि एक दिन उसे धराशायी करके ही दम लेंगे।

द्रोण—महाराज, आप एक राजा हैं दूसरे दुर्योधन के पिता हैं। आप साम, दाम, भेद और दण्ड में से किसी भी उपाय से इसे सुमार्ग पर ला सकते हैं।

धृतराष्ट्र—आचार्य, आप दुर्योधन को जानते ही हैं। वह मेरे कहने में नहीं है। उसकी सुमति या कुमति जो कुछ कहेगी, वही वह करेगा।

शकुनि—सौ की एक कही। जब पिता बूढ़ा हो जाता है तो घर में बड़े पुत्र की ही चलती है।

विदुर—तब तो सर्वनाश अनिवार्य है।

धृतराष्ट्र—भवितव्यता के आगे सिर झुकाना ही पड़ता है।

श्रीकृष्ण—क्या खाली हाथ ही मुझे जाना पड़ेगा ?

(कर्ण दुर्योधन को संकेत करता है।)

दुर्योधन—न तुम्हें जाने की आवश्यकता है और न तुम्हारे हाथ ही खाली रहेंगे केशव।

(पाश लेकर कृष्ण को बांधने को उठता है।)

श्रीकृष्ण—यह बात! संसार को मुक्त करने वाले मुझे तू क्या बांधेगा मूर्ख !

(हट से सभाभवन से निकल जाते हैं।)

भीष्म—दुष्ट ने श्रीकृष्ण को सादर विदा करने का भी हमें अवसर न दिया। दुर्योधन, जिन कुमित्रों के इशारों पर तुम नाच रहे हो, विपत्ति के समय वे ही तुम्हारा साथ न देंगे।

कर्ण—दादा, मैं देख रहा हूं कि आप मुझ पर सदा से वक्रदृष्टि रखते रहे हैं। आपके कठोर वचन सुन-सुनकर मैं तंग आ गया हूँ।

भीष्म—कर्ण, सत्य और हितकर वचन सदा कठोर लगा करते हैं।

कर्ण—तो आप चाहते हैं कि मैं यहां आना जाना और युद्ध करना छोड़ दूं!

भीष्म—छोड़ दोगे तो कौन सा अनर्थ हो जायगा !

कर्ण—तो आज से मैं अस्त्र छोड़ देता हूँ। (अपना धनुष हाथ से भूमि पर रखता है।) पितामह, अब आप मुझे न युद्ध में और न सभा में देखेंगे। जब आपकी मृत्यु हो जायगी तब मैं शस्त्र उठाऊंगा।

भीष्म—कर्ण शायद यह समझता है कि यदि यह न लड़ेगा तो हमारा काम ही न चलेगा। इसलिए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अकेला ही प्रतिदिन हजारों योद्धाओं का वध किया करूंगा। (पटाक्षेप)

चौथा अंक

पहला दृश्य

(स्थान—पांडवों का भवन, युधिष्ठिर, उनके भाई और द्रौपदी बातें कर रहे हैं।)

युधिष्ठिर—जब से गोपाल गये हैं मेरे मन को चैन नहीं। क्या युद्ध...

भीष्म—भाई साहब, युद्ध के भय से व्याकुल हो रहे हैं।

युधिष्ठिर—भीम, मैं अपने लिए नहीं व्याकुल हो रहा। व्याकुल हो रहा हूँ उन असंख्य नारियों के लिए जिन्हें पति-मृत्यु से वैधव्य-यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी, पुत्रमृत्यु से निरपत्यता का कष्ट उठाना पड़ेगा और घर-गृहस्थी चलाने वालों के न रहने से असहाया होकर रोटी के टुकड़े टुकड़े के लिए पराधीन होना पड़ेगा। मैं व्याकुल हो रहा हूँ उन अनाथ बच्चों—दुधमुँहे बच्चों के लिए जिनके आर्तनाद से आकाश गूंज उठेगा।

द्रौपदी—महाराज, आप दूसरों के दुःखों का तो ऐसा भयंकर चित्र खींच रहे हैं, पर भूल गया है मेरे बालों का पापी दुःशा-[illegible]से खींचा जाना। अब भी जब उस बीभत्स...

अर्जुन—ताली दोनों हाथों से पिटती है दादा। एक पक्ष के पूर्ण प्रयत्न करने पर भी यदि दूसरा पक्ष तना ही रहे तो असफलता के सिवा और परिणाम ही क्या हो सकता है ?

भीम—दुर्योधन की ईर्ष्याग्नि में मत्सर और विद्वेष की आहुतियां दे देकर कर्ण और शकुनि उसे प्रचण्ड करते रहते हैं, शान्त होने ही नहीं देते ।

युधिष्ठिर—तो फिर गले-पड़ा ढोल बजाना ही पड़ेगा ?

(श्रीकृष्ण का प्रवेश, सब उठ खड़े होते हैं ।)

श्रीकृष्ण—हाँ, बजाना ही पड़ेगा, और ऐसे ज़ोर से बजाना पड़ेगा कि उसकी दिग्दिगन्तव्यापिनी कराल ध्वनि अनन्त काल तक संसार में गूंजती रहेगी । (श्रीकृष्ण के बैठने पर सब बैठ जाते हैं ।)

अर्जुन—हमारी नैया के तो आप ही पतवार हैं सखे ।

श्रीकृष्ण—अर्जुन तो सारा बोझ मुझ पर ही डाल कर आप अलग खड़ा रहना चाहता है ।

अर्जुन—अलग खड़ा नहीं रहना चाहता, आप के समीपतम होना चाहता हूँ, आप के हृदय में स्थान पाना चाहता हूँ ।

श्रीकृष्ण—वह स्थान तो तुम्हें युगों से मिल चुका है । अब बातों का अवकाश नहीं, युद्ध की तैयारी करनी चाहिये ।

अर्जुन—ठीक-ठीक पता है कि हमारी और उनकी ओर कितनी-कितनी सेनायें और कौन-कौन क्षत्रिय होंगे ?

श्रीकृष्ण—सब पता है । हमारी ओर सात अक्षौहिणी और कौरवों की ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेनायें होंगी । इसके सिवाय उनकी ओर भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा,

कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, आदि चुने चुने वीर होंगे।
और तुम्हारी ओर—

अर्जुन—देवाधिदेव स्वयं नारायण।

श्रीकृष्ण—मैं तो दुर्योधन से अपनी नारायणी सेना देते समय यह प्रण कर चुका हूँ कि मैं युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा। अब मेरे लिये और काम ही क्या रह गया है!

अर्जुन—मैं अपनी देह को आपके सुपुर्द कर दूंगा। उस की रक्षा का भार आप के ऊपर होगा।

श्रीकृष्ण—मैं इस का आशय नहीं समझा।

अर्जुन—वासुदेव, जानकर भी मुझे बना रहे हो? मैं चाहता हूँ कि युद्धक्षेत्र में आप सदा मेरे अंग-संग रहें।

श्रीकृष्ण—अब मैं तुम्हारा इशारा समझ गया हूँ। मैं तुम्हारा सारथी बनने को तैयार हूँ

युधिष्ठिर—तब तो हमारा बेड़ा पार है।

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

(स्थान—नदीतट, समय—प्रातः, कर्ण सूर्याभिमुख होकर ध्यानमग्न बैठा है।)

(कुन्ती का प्रवेश)

कुन्ती—यही है, यही है मेरे हृदय का टुकड़ा। कैसी सुन्दर मूर्ति और सूर्यवत् देदीप्यमान मुखद्युति! (ध्यान से देखकर) ... समय ध्यानमग्न है, इसलिए कुछ देर तक यहीं ...ना होगा। (कुछ सोच कर) बड़ी कठिन समस्या है,

किस मुख से मैं इस से किये गए दुर्व्यवहार का वर्णन कर सकूंगी। (उसके सामने ही खड़ी हो जाती है।)

कर्ण—(आँख खुलने पर) देवी, आप कौन हैं और यहां क्यों खड़ी हैं ?

कुन्ती—कर्ण, तुम्हारे सामने तुम्हारी माता खड़ी है।

कर्ण—मेरी माता ! मेरी माता तो राधा है।

कुन्ती—बेटा, तुम राधेय नहीं, कौन्तेय हो।

कर्ण—आप का नाम कुन्ती है क्या ?

कुन्ती—हां, मेरा नाम कुन्ती है और मैं ही कुन्ती युधिष्ठिर, उनके भाई अर्जुन और भीमसेन की जननी हूँ।

कर्ण—होंगी, पर मैं कैसे मानूं कि आप मेरी भी माता हैं ? मुझे तो अधिरथ ने नदी में बहता पाया था।

कुन्ती—तुम्हारा कथन सत्य है बेटा। मैंने ही तुम्हें नदी में बहा दिया था।

कर्ण—देवी, आप मेरी माता नहीं हो सकतीं। आप से तो सम्बन्ध-विच्छेद उसी समय हो गया था जिस समय आपने हृदय पर पत्थर रख कर मुझे नदी में डुबो दिया था। उसके बाद राधा ने मुझे पुनर्जन्म देकर अपनी गोद की शरण दी। वही मेरी माता है।

कुन्ती—बेटा, तुम क्षत्रियकुल में उत्पन्न हो, सूतपुत्र नहीं हो। पांडवों के भाई हो—धर्मराज युधिष्ठिर, गाण्डीवधारी अर्जुन और गदाधारी भीम तुम्हारे भाई हैं, तुम उनके बड़े भाई हो।

कर्ण—देवी, सूतपुत्र होने का मुझे बड़ा गर्व है। इसी नाम

से मैंने इतनी विख्याति पाई है। इतने काल तक तो आप को मेरा स्मरण हुआ नहीं, अब यह सम्बन्ध जताने का क्या कोई विशेष कारण है ?

कुन्ती—बेटा, मेरे हृदय में दूसरे पुत्रों की तरह तुम्हारे लिए भी स्नेह का वही उच्चासन रहा है। कई बार तुम्हें मिलने को जी भी चाहा परन्तु साहस और अवसर दोनों ने साथ नहीं दिया। जब अस्त्रपरीक्षा के समय तुम में और अर्जुन में युद्ध होने लगा था तो तुम लोगों के अनिष्ट की आशङ्का से ममतावश मेरा हृदय बैठ गया और मैं मूर्छित हो गई थी। वही समय—युद्ध का समय अब अधिक भयङ्कर रूप में आने को है। इस युद्ध के भयङ्कर परिणाम का विचार कर, अब मुझसे न रहा गया—मुझे आना ही पड़ा। (कांपते हुए स्वर में) कर्ण, भाइयों-भाइयों के इस युद्ध को रोको, तुम रोक सकते हो।

कर्ण—कुछ भी हो, यह युद्ध मुझसे रुकने का नहीं और न मैं इसे रोकना चाहता हूँ। युद्ध होगा और उसमें मैं अपने शरीर तक की बलि देकर महाराज दुर्योधन के उपकारों का बदला चुकाऊंगा।

कुन्ती—ऐसा न कहो बेटा, दुर्योधन पापी है, अत्याचारी है। उसका साथ छोड़ कर अपने भाइयों का पक्ष ग्रहण करो। तुम उनके बड़े भाई हो और वे तुम्हें बड़े मान कर तुम्हारी आज्ञा में रहेंगे।

कर्ण—यह कभी न होगा, चाहे कुछ भी हो। दुर्योधन मेरा स्वामी है जब मैं केवल सूतपुत्र था तो मुझे अंगराज बनाकर

महारथी का पद दिया। यदि मैं उसका पक्ष छोड़ कर उसके शत्रुओं से जा मिलूं तो मेरे जैसा कृतघ्न कौन होगा!

कुन्ती—क्या माता की बात न मानोगे कर्ण?

कर्ण—(आवेश से) माता के नाम को कलुषित न करो देवी। माता प्रेम और वात्सल्य की सजीव मूर्ति होती है। उसका जीवन निष्काम बलिदान का समुज्ज्वल आदर्श है। संसार में माता के सिवा कौन दूसरी स्त्री अपने शरीर का रक्त, मज्जा और मांस देकर सन्तान को पुष्ट करती है? मैं मातृशक्ति का पूरा भक्त हूँ, उसके चरणों पर मेरा सिर सदा झुका रहेगा। पर आप मेरी माता नहीं—मेरी माता राधा है। उसी के चरणों की रज मेरे माथे का तिलक रहेगी।

कुन्ती—तो क्या तुम अपने भाइयों से लड़ोगे—अपने हाथ से अपने भाइयों का वध करोगे? बेटा, ऐसा न करो। अपने भाइयों के ही लोहू से अपने हाथ न रंगो। स्वकुल-घात जघन्यतम पाप है।

कर्ण—देवी, आपके आग्रह पर मैं अर्जुन को छोड़ कर किसी और पांडव को जान से न मारूंगा। पर अर्जुन के साथ मैं मरने-मारने का युद्ध करूंगा। यह मेरा प्रण है। मेरे या अर्जुन के मरने पर भी आपके पांच ही पुत्र बने रहेंगे, इस लिए हम दोनों के युद्ध का आप को कुछ भय न होना चाहिए। यदि अर्जुन ने मुझे मार डाला तो मुझे अक्षय-स्वर्ग मिलेगा और यदि मैंने अर्जुन को मार दिया तो

कुन्ती—बेटा, मुझे खेद है कि मैं तुम्हारे विचार को न बदल सकी। तो भी इतना लाभ तो हुआ कि तुमसे अर्जुन के सिवा दूसरे भाइयों को न मारने का प्रण ले चली हूं। इस प्रण को भूल न जाना। (जाती है।)

कर्ण—अच्छा होता यदि माता कुन्ती से इस समय भेंट न होती। इससे मेरी जीवनसरिता की आनन्दमय लहरी में भयंकर तूफान उठ पड़ा है। संभव है अब मेरी तलवार भ्रातृस्नेह के कारण अर्जुन पर भी इतने ज़ोर से न चल सके। जिन्हें मैं अपने जानी शत्रु जान रहा हूं वे ही मेरे भाई निकले। कैसी विधि-विडम्बना है!

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(स्थान—समरभूमि, दोनों पक्षों की सेनायें व्यूह रच कर अपने अपने पक्षों में खड़ी हैं। युद्ध के बाजे और नरसिंघे बज रहे हैं। योद्धा लोग युद्धभूषा से सजे हुए युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं)

(रथ में बैठे अर्जुन का प्रवेश। अर्जुन के रथ को श्रीकृष्ण हाँक रहे हैं।)

अर्जुन—वासुदेव, मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य में हाँक ले चलिये। वहां से मैं देखना चाहता हूँ कि शत्रुपक्ष में से कौन कौन युद्ध के लिए आये हैं।

श्रीकृष्ण—बहुत अच्छा। (अर्जुन के रथ को समरभूमि के मध्य में लाकर खड़ा कर देते हैं।)

अर्जुन—गोपाल, जैसे हमारी सेना का संचालन धृष्टद्युम्न कर रहे हैं, उसी तरह कौरवसेना का अधिपत्य किसे सौंपा गया है ?

श्रीकृष्ण—अर्जुन, वह देखो सामने ऊंची ध्वजा से युक्त रथ में बैठे हुए बालब्रह्मचारी, तुम्हारे दादा भीष्म जी कौरव-सेना का संचालन कर रहे हैं। इन्हें जीतना सव्यसाची, ज़रा टेढ़ी खीर है।

अर्जुन—(ध्यान से देख कर) वासुदेव, मुझे तो शत्रुपक्ष में भी काका, चाचा, मामा, ताऊ, पितामह, गुरु, आचार्य सब अपने ही सम्बन्ध वाले दिखाई देते हैं। क्या इनके साथ युद्ध करना होगा ?

श्रीकृष्ण—इनके साथ नहीं तो और किसके साथ लड़ोगे ?

अर्जुन—मुझ से यह नहीं होगा मित्र। मेरे हाथ चाहे कट जायें पर इनसे मैं अपने ही सम्बन्धियों पर शस्त्र न चलाऊंगा। (शस्त्र हाथ से छोड़ देता है।)

श्रीकृष्ण—ठीक युद्ध के समय ही तुम्हारे मन में ऐसी भीरुता का संचार कैसे हो गया अर्जुन ? शत्रु देखेंगे तो हंसेंगे। तुम वीरवर पांडु के आत्मज हो, तुम्हारे इस अक्षत्रियोचित कर्म से उनका उज्ज्वल वंश सदा के लिये कलंकित हो जायगा, स्वर्ग में उनकी आत्मा को कष्ट होगा।

अर्जुन—मेरे बस की बात थोड़े ही है ! मैं क्या करूं ? इन्हें देखते ही मेरा हृदय कांप उठा है, हाथ पैर सुन्न हो गए हैं, शरीर में रोमांच हो आया है, हाथों में गांडीव उठाने की शक्ति नहीं रही। सारी दिशायें मुझे कुलालचक्र की तरह घूमती दीख रही हैं।

श्रीकृष्ण—इन बातों को पहले ही सोच-विचार लेना था। ऐसे आड़े समय में इन की ओर ध्यान देना ही भीरुता है। तुमने कभी यह भी विचार किया है कि इनकी मृत्यु के बाद राज्य तुम लोगों के ही हाथ आयगा।

अर्जुन—कृष्ण, मुझे न विजय चाहिए और न राज्यभोग। जिनके लिए हमें राज्यसुख के भोग की इच्छा है यदि वे सम्बन्धी ही न रहे तो राज्य हमारे किस काम का! आप ही कहिए मधुसूदन, जिन की कृपा से मुझे शस्त्रशिक्षा मिली है, उन पूज्य आचार्य पर मैं कैसे बाण छोड़ सकूंगा? जिन पितामह ने मुझे गोद में खिला कर इतना बड़ा किया है, उन पर यह हाथ कैसे उठेगा! उनका वध करते मुझे लज्जा न आयगी?

श्रीकृष्ण—अर्जुन, शोकग्रस्त होने से तुम्हारा मन इस समय अपने वश में नहीं रहा, नहीं तो ऐसी बातें कभी न करते। जिन सम्बन्धियों के विषय में तुम इतना शोक कर रहे हो उनसे तुम्हारा नित्य सम्बन्ध नहीं है। पता है वे लोग पूर्व जन्म में कौन थे और आगे क्या होंगे? इन लोगों के हज़ारों, लाखों जन्म हो चुके हैं और हज़ारों लाखों और होंगे, इसी तरह तुम्हारा और मेरा जन्म-चक्र भी न जाने कब से चला आ रहा है और कब तक चलता रहेगा।

अर्जुन—वासुदेव, तो फिर मृत्यु से भय क्यों होता है?

श्रीकृष्ण—गुडाकेश, इसका कारण अज्ञान है। देखा जाय तो मृत्यु केवल दशा का परिवर्तन

बचपन, जवानी और बुढ़ापा शरीर की तीन अवस्थायें हैं, उसी तरह जन्मान्तर चौथी अवस्था है। सच पूछो तो जन्म बदलना वैसे है जैसे पुराने कपड़े उतार कर नये पहनना। शरीर क्षणिक है और आत्मा शाश्वत। जीवात्मा न स्वयं मरता है और न मारा जाता है। इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी भिगो नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती।

अर्जुन—घनश्याम, यदि किसी को मारने से उसके जीवात्मा का कुछ बनता बिगड़ता नहीं, तो फिर उसका वध किया ही क्यों जाय ?

श्रीकृष्ण—हम लोग संसाररूपी नाट्य मंच पर अभिनय करने वाले पात्र हैं। जैसे नाट्य मंच पर प्रत्येक पात्र को अपना अपना अभिनय करना पड़ता है, उसी तरह संसार की मोहमाया के जाल में फंस कर हमें भी सब काम करने पड़ते हैं। जो कोई अपना कार्य अच्छी तरह से कर लेता है लोग उसकी स्तुति करते हैं। तुम क्षत्रिय हो अर्जुन, युद्ध क्षत्रियों का धर्म है। यदि तुम युद्ध से विमुख होकर भाग जाओगे, तो लोग तुम्हें भीरु और कायर कहेंगे। इससे तुम्हारा ही नहीं तुम्हारे वंश का भी अपयश होगा।

अर्जुन—क्षत्रियधर्म मैं अच्छी तरह जानता हूँ। पर यह क्या निश्चित है कि हम ही जीतेंगे ? यदि हार गये तो यह मार-काट किस काम की ?

श्रीकृष्ण—मनुष्य का कर्तव्य कार्य करना है। उसका फल ईश्वरा-

धीन है। निष्काम कर्म करने से इष्ट फल न भी मिले तो भी चित्त की शान्ति तो वनी रहती है। इस लिए अर्जुन, शत्रुओं की विजय-पराजय का विचार छोड़कर अपना कर्तव्य करते जाओ ! यह ज्ञान कि मैंने कर्तव्यपालन किया है चित्त को शान्ति और सन्तोष प्रदान करता है।

अर्जुन—वासुदेव, आपके इस अमूल्य उपदेश ने मेरे ज्ञानचक्षु खोल दिये हैं। अब मेरी बुद्धि ठिकाने लगी है। कहिये क्या आज्ञा है ?

श्रीकृष्ण—तुम क्षत्रिय हो अर्जुन, अपने धर्म का पालन करते हुए शत्रुदल का विध्वंस करो।

(अर्जुन अपना धनंजय शंख बजाता है। युद्ध शुरू हो जाता है। अर्जुन का पहला तीर भीष्म के चरणों पर गिरता है।)

भीष्म—(तीर को उठाते हो।) धन्य हो अर्जुन, युद्ध के समय भी तूने कुलमर्यादा को नहीं छोड़ा, पहले तीर के द्वारा अपने पितामह के चरणों पर प्रणाम किया है। तुम्हारे तीर को ही तुम्हारा प्रतिनिधि मान कर मैं उसे हृदय से लगाता हूँ। (तीर को हृदय से लगाते हैं। फिर शंखनाद कर पांडवों की सेना पर तीर छोड़ते हैं। युद्ध छिड़ जाने से शोरों और कोलाहल होने लगता है।)

अर्जुन—सखे कृष्ण, इस युद्ध का मूल-कारण कर्ण है, इस लिए सब से पहले मेरा रथ उसी मदान्ध के पास ले चलो। पहले मैं बीज को ही नष्ट करना चाहता यह रूपी विषवृक्ष फलता-फलता ही न

श्रीकृष्ण—कुन्तीपुत्र, तुम्हें मालूम नहीं कि कर्ण का यह प्रण है कि पितामह के जीते मैं अस्त्र ग्रहण न करूंगा ? इसलिए कर्ण से यदि युद्ध की लालसा है तो पहले पितामह का अन्त करो।

अर्जुन—(व्यंग्य से) कर्ण का यह प्रण उस की भीरुता का परिचय देता है। कैसा अच्छा बहाना निकाला युद्ध से भागने का !

श्रीकृष्ण—अर्जुन, कर्ण में चाहे कई और दोष हों, पर उस में भीरुता लेशमात्र भी नहीं। उस के समान शूर योद्धा संसार भर में दो चार भी शायद ही हों। जीवन-संग्राम में प्रतिकूल परिस्थितियों और पहाड़ सी बाधाओं का सामना करते करते वह कभी हताश नहीं हुआ। उस के स्थान में कभी कोई और होता तो निराश होकर न जाने क्या कर बैठता ! उसके शरीर और मन में इतनी दृढ़ता है कि ये दोनों इस्पात के बने मालूम होते हैं। भीष्म के बाद आचार्य को छोड़ कर मैं कर्ण को ही सर्वोत्तम वीर समझता हूँ। वह उपहास के योग्य नहीं, आदर के योग्य है। अब उसके साथ युद्ध होगा—

अर्जुन—तब तो आनन्द आ आयगा। बहादुर शत्रु के साथ युद्ध करने से जितना आनन्द मुझे आता है, वैसा स्वर्गसुख से भी नहीं आता।

(श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को आगे बढ़ा ले जाते हैं)

(पटाक्षेप)

पांचवाँ दृश्य

(स्थान—दुर्योधन का डेरा । वहां पर दुर्योधन, द्रोण, दुःशासन, शकुनि, शल्य, जयद्रथ, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि योद्धा बैठे हैं ।)

दुर्योधन—दादा जी दस दिन शत्रुओं का संहार कर वीरगति पा गये हैं। अब उनके अभाव में हमें बहुत कष्ट हो रहे हैं। शत्रुपक्ष के दस हज़ार सैनिकों को प्रतिदिन मार कर वे दम लेते थे। जब तक वे सेनापति रहे हमें किसी का भय नहीं था। शत्रुओं के चेहरों का रंग सदा उड़ा रहता था। पर अब........

शकुनि—अब चिन्ता न करें महाराज। यद्यपि भीष्म जी की मृत्यु से हम सब को बड़ा खेद हुआ है तो भी कर्ण से वीर योद्धा अब भी हमारे पक्ष में विद्यमान हैं।

दुःशासन—मामा ठीक कह रहे हैं—कर्ण को बुलवाइये।

कृपाचार्य—कर्ण की वीरता में किसे सन्देह हो सकता है! महारथियों में वे अग्रगण्य हैं।

दुर्योधन—तुम लोग सत्य कहते हो। इस समय हमारी डूबती हुई नाव को कर्णसमान प्रवीण और शूर कर्णधीर की आवश्यकता है। परशुराम जी का शिष्य होने के कारण कर्ण अर्जुन से धनुर्विद्या में बहुत बढ़ा चढ़ा है।

सब लोग—(एक स्वर से) तो उन्हें बुलवाइये।

(दुर्योधन एक द्वारपाल को कर्ण को लाने के लिये भेजता है।)

अश्वत्थामा—एक बात सोचने की है। पिछले दस दिनों के युद्ध ... अनुपस्थित रहने से कर्ण को श्रम ...

अनुभव ही नहीं है। इसलिए उसी पर एकदम सारा बोझ रख देना उचित न होगा।

शकुनि—उसका युद्ध में भाग न लेना तो उल्टे हमारे लाभ की बात है। युद्ध में भाग न लेने से वह बिल्कुल ताज़ा है, उसका बल ज़रा भी खोया नहीं हुआ।

(कर्ण आता है। सब उसका आदर करते हैं।)

दुर्योधन—अंगराज, आइये। हम लोग तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं।

कर्ण—(बैठ कर) मुझे दादा की मृत्यु का बड़ा शोक है महाराज। अब मुझे जो आज्ञा हो मैं करने को तैयार हूँ।

दुर्योधन—पितामह के मरने के बाद, सर्वप्रथम इस उपस्थित समस्या को हल करना होगा कि दादा जो सेनापति का पद छोड़ गये हैं, वह किसे दिया जाय।

कर्ण—राजन्, दादा की मृत्यु के बाद आचार्य के सिवा मुझे कोई ऐसा वीर दिखाई नहीं देता जो सेनापति बनने के योग्य तक हो। आचार्य हम सब के गुरु हैं, उनको यह पद देने से कोई स्पर्धा नहीं करेगा।

दुर्योधन—तुमने मेरे मन की बात कही है अंगराज। (द्रोण से) आचार्य, पितामह के बाद दादा की धरोहर—यह पद—मैं आपके सुपुर्द करता हूँ। मुझे ज़रा भी संशय नहीं कि आप इस धरोहर की जी-जान से रक्षा न करेंगे।

(सब एक स्वर से—आचार्य द्रोण की जय !)

द्रोण—जो पद महात्मा भीष्म के चिरस्मरणीय नाम से पवित्र हो चुका है, मैं अपने आपको उसके योग्य नहीं समझता।

फिर भी क्योंकि आप लोगों ने मुझे उसके योग्य समझ कर इसे दिया है अतः अपने प्राण न्योछावर कर भी मैं इसे कलंकित न करूंगा। मेरा पराक्रम, बाहुबल, धनुर्विद्या और सब कुछ इसी पद की रक्षा में समर्पित हैं।

(दुर्योधन ने तिलक से द्रोण का अभिषेक किया। रण के बाजे बजने लगे।)

र—(एक स्वर से—सेनापति द्रोण की जय !)

(पटाक्षेप)

छठा दृश्य

(*स्थान—समराङ्गण, एकान्त*)

(दो सैनिक भागते हुए आते हैं और हाँफते-हाँफते खड़े हो जाते हैं।)

वेश्वर—सोमेश्वर भैया, आज तो जान बड़ी कठिनता से बची।

सोमेश्वर—जान बची तो लाखों पाये। लड़ाई भाइयों भाइयों की, और सत्यानास हो रहा है हम जैसे बेचारों का।

वेश्वर—भैया, एक बात कहता हूँ—आज युद्ध का आनन्द आ गया। ऐसा युद्ध कभी पहले न देखा था।

सोमेश्वर—तुझे आनन्द आया होगा, पर मेरी तो जान भय के मारे निकल रही थी। उधर अर्जुन का तीर धनुष से निकलता था, इधर मेरे प्राण शरीर से निकलने लगते थे।

देवेश्वर—कहीं निकल तो नहीं गये ?

सोमेश्वर—बस निकलने को ही थे कि मैंने हृदय पर हाथ रखकर उन्हें जोर से पकड़ लिया, निकलने न दिया।

देवेश्वर—(हंस कर।) अच्छा हुआ निकले नहीं। एक बात

लड़ते तो अर्जुन भी अच्छे हैं-पर जैसा युद्ध आज हमारे सेनापति आचार्य ने किया है, वैसा अब तक किसी ने नहीं किया। दिल चाहता था कि भाग कर उनके हाथ चूम लूं।

सोमेश्वर—गये क्यों नहीं ? जाते तो मजा आ जाता। तुम चूमने ही न पाते कि यह मुंड (उसके सिर पर हाथ धर कर) रुएड से अलग हो जाता।

देवेश्वर—आचार्य के बाण चलते ही शत्रुओं के दल के दल धराशायी हो जाते थे और जो बचते थे वे आंधी के आगे बेपाल नौका की तरह भाग जाते थे।

सोमेश्वर—भाई, हमारे पक्ष में एक से एक बढ़ कर शूर हैं। कर्ण क्या किसी से कम है ? आज उसकी अर्जुन से मुठभेड़ हो गई। उस समय अंगराज ने पैने तीर छोड़-छोड़ कर अर्जुन के होश उड़ा दिये थे और यदि कृष्ण की उसको सहायता न मिलती तो वह बचने न पाता। जैसे नदी का प्रवाह पहाड़ की चट्टान से टकरा कर दो धाराओं में बँट जाता है, उसी तरह कर्ण के बाणों से पांडवों की सेना के दो भाग हो गये थे। बीच में महारथी कर्ण उत्तुङ्ग पर्वत की तरह खड़ा रहा। कर्ण क्या है मानो—

(दो और सिपाही आते हैं।)

चन्द्रभानु—भीरुता की सजीव मूर्ति है !

सोमेश्वर—यह क्या कह रहे हो चन्द्रभानु ! मैं तो कहने वाला था कि वीरता की सजीव मूर्ति है, और वस्तुतः वह है भी।

विश्वेश्वर—रहने भी दो—(व्यंग्य से) वीरता की सजीव मूर्ति ! यथा एक नन्हें से बालक से मुँह की खाकर भागा।

चन्द्रभानु—मुँह की खाते ही, पांव सिर पर रख लिये और भाग गया।

विश्वेश्वर—बालक क्या था—यम था !

चन्द्रभानु—अब तक पुत्र से पाला पड़ा है, जब पिता से पड़ेगा तो आटे-दाल का भाव याद आ जायगा।

सोमेश्वर—क्या बात है भैया, कुछ हमें भी बताओ।

विश्वेश्वर—(सोमेश्वर की बात का ख्याल न कर) वह सिंहशावक था और ये सब के सब शृगाल थे—शृगाल।

चन्द्रभानु—किन्तु खेद है कि इस सत्यानासी युद्ध की विकराल गाल के नीचे वह भी अन्त में चला गया।

देवेश्वर—कुछ हमें भी बताओगे कि अपना ही राग अलापते जाओगे ?

विश्वेश्वर—भाई, मरना इसी का नाम है, ईश्वर मौत दे तो ऐसी।

चन्द्रभानु—एक रणभूमि, दूसरे ऐसी वीरता ! एक ने दूसरी को आश्रय दिया।

सोमेश्वर—हम लोग इन पहेलियों को नहीं बूझ सकते।

चन्द्रभानु—यह पहेली नहीं, सची घटना है—आंखों से देखी, इन्हीं (आंखों की ओर इशारा कर) आँखों से देखी।

देवेश्वर—क्या देखा है ?

चन्द्रभानु—यह तो तुम सुन ही चुके होगे कि आचार्य ने आज चक्रव्यूह रचा है।

... सुना है।

चन्द्रभानु—उसकी रक्षा के लिए चुने चुने महारथी और अतिरथी लगाये गये थे और उसकी द्वाररक्षा का कार्य जयद्रथ के सुपुर्द हुआ था। अर्जुन और उनके पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु के सिवा उसके अंदर कोई नहीं घुस सकता था।

सोमेश्वर—अर्जुन को तो मैंने कहीं और युद्ध करते देखा है।

चन्द्रभानु—यह भी इन लोगों की चाल थी। उन्हें संशप्तकगण कहीं दूर स्थल में युद्ध के लिए ले गये थे। पीछे रह गया था अभिमन्यु। वह शेर का बच्चा ज़रा भी नहीं घबराया और व्यूह में जाने को तैयार होगया। उसके साथ भीम आदि कई और वीर भी थे, पर उन सब को जयद्रथ ने द्वार पर ही रोक लिया। केवल अभिमन्यु ही अंदर घुसने पाया।

विश्वेश्वर—भीतर कौरव दल के चुने चुने नायक एकत्रित थे, फिर भी वीर अभिमन्यु नहीं घबराया। वह था केवल एक और शत्रु थे अनेक। पर उस अकेले ने ही उन सब के दांत खट्टे कर दिये। जिधर मुँह घुमाता मैदान साफ हो जाता। दुर्योधनकुमार लक्ष्मण, कर्ण-कुमार और दूसरे वीरों को आन की आन में यमपुर भेज दिया।

सोमेश्वर—धन्य हो कुमार! फिर क्या हुआ भैया?

चन्द्रभानु—फिर हुआ क्या? बहुत देर तक युद्ध होता रहा। जो भी उसके सामने आया टिक न सका। दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण से महारथी शार्दूल के सामने से शृगालों की तरह दुम दबाकर भाग गये?

सोमेश्वर—(विस्मय से) इसके पश्चात् ?

चन्द्रभानु—इसके पश्चात् ऐसी घटना हुई जिस का वर्णन करते छाती फटती है। हमारे नायकों ने ऐसा जघन्य कार्य किया जिस का जिकर करते लज्जा से मुख नीचे करना पड़ता है। द्रोण और कर्ण आदि छः महा-रथियों ने मिल कर उस अकेले बालक को मार दिया।

देवेश्वर और सोमेश्वर—छिः ऐसा घृणित व्यापार !

चन्द्रभानु—भैया देवेश्वर, मुझे तो इस अधर्मयुद्ध से घृणा हो गई है।

देवेश्वर—तुम्हारा कहना ठीक है। ऐसे युद्ध में भाग लेना महा-पाप है।

चन्द्रभानु—पाप तो है ही।

सोमेश्वर—तो चलना चाहिए। कहीं किसी ने देख लिया तो फिर धधकती आग में झोंक दिये जायेंगे।

(सब जाते हैं।)

सातवां दृश्य

(स्थान—समरभूमि, कर्ण और उसके पास दुर्योधन खड़ा है। दोनों के रथ पास पास ही खड़े हैं।)

दुर्योधन—यदि ऐसा न करोगे तो सारी सेना का अभी अन्त हुआ चाहता है।

कर्ण—महाराज, मुझे तनिक विचार करने दो।

दुर्योधन—विचार करने का समय कहां, कर्ण ! इधर तुम विचार-

मग्न रहोगे, उधर यह राक्षस हमारे सब वीरों का संहार कर देगा।

कर्ण—तो तुम कहते हो कि उस अमोघ शक्ति का घटोत्कच ही पर प्रयोग किया जाय ?

दुर्योधन—और किस दिन के लिये उसे रख छोड़ियेगा ! हम सब लोग और आचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा आदि वीर योद्धा पूरा यत्न कर चुके हैं पर वह किसी से दबता ही नहीं। अलायुध को उस के सामने भेजा। उसे भी उसने क्षण में मार दिया।

कर्ण—महाराज, आपको पता है कि यह शक्ति मैंने कुण्डल और कवच के बदले इन्द्र से अर्जुन को मारने के लिये ली थी। इस शक्ति का ही यह प्रताप है कि अर्जुन को मेरे सामने आने का साहस नहीं होता। यदि यह साधन भी मेरे हाथ से चला गया तो फिर अर्जुन को कोई नहीं मार सकेगा। वह भयंकर सांप—

दुर्योधन—सांप का जब मुकाबला होगा तो देखा जायगा, अब तो इस सपोले से हमारा पीछा छुड़ाओ। जिस तरह हम सब लोगों ने मिल कर अभिमन्यु को मार दिया था, उसी तरह अर्जुन को भी मार देंगे। पर इस घटोत्कच की आसुरी माया का मुकाबला हम नहीं कर सकते। मेघ की तरह गर्जन करता हुआ यह जिधर जाता है उधर ही लाशों के ढेर जमा हो जाते हैं।

(एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में गदा लिए हुए घटोत्कच आता है।)

घटोत्कच—(दुर्योधन और कर्ण से) कुरुवंश के निर्लज्ज कुपुत्रो, तुम्हारे अनुयायी सैनिकों का मैं संहार कर रहा हूँ और तुम लोग यहां पर छिपे बैठे हो । परन्तु तुम्हारा छिपना निष्फल है। तुम्हारा काल यहां भी आ गया है। (दुर्योधन से) मेरे पिता को विष देने वाले नीच, पहले मैं तुझे ही नरक में भेजता हूँ। (उस पर त्रिशूल चलाता है । दुर्योधन भाग जाता है और त्रिशूल से उसके रथ के घोड़े कट जाते हैं।) बच गया कायर, आततायी सदा कायर होते हैं। (कर्ण से) राधापुत्र, तू नहीं भाग सकेगा। ले तू भी ले। (कर्ण पर गदा-प्रहार करता है। कर्ण तीर छोड़ कर गदा को काट देता है।)

दुर्योधन—(फिर आकर) कर्ण, यही समय है शक्ति चलाने का। शीघ्र करो, यह भाग गया तो और भी उपद्रव करेगा।

कर्ण—यह शक्ति तुझे जीता न छोड़ेगी। (शक्ति चलाता है। शक्ति घटोत्कच का शरीर काट कर इन्द्र के पास चली जाती है।)

दुर्योधन—इसके मरने पर देह में प्राण आये हैं। थोड़ी ही देर और यदि यह जीवित रहता तो हम में से एक को भी जीवित न छोड़ता। दुष्ट मरते मरते भी अपनी पर्वत-समान देह के नीचे सैकड़ों सैनिकों को ले मरा। आखिर भीम का ही तो पुत्र था! (कर्ण के पास आकर) मित्र, किस सोच में पड़े हो?

कर्ण—अमोघ शक्ति के हाथ से निकल जाने से अब अर्जुन के वध की आशा मिट गई है। अर्जुन मुझसे बलवान नहीं है परन्तु कृष्ण की सहायता का अभेद्य कंचुक जो इसने

पहन रक्खा है उनके सामने मुझसे कुछ नहीं बन पड़ेगा।

दुर्योधन—यह भला मो टलो, भविष्य का विचार भविष्य में करेंगे।

(दोनों जाते हैं।)

आठवां दृश्य

(स्थान—दुर्योधन का भवन, समय—रात्रि)

दुर्योधन—(चिन्तामग्न) आचार्य भी चल दसे। दादा के बाद आचार्य के भरोसे आशाओं का गगनचुम्बी प्रासाद खड़ा किया था, वह भी धराशायी हो गया। अब पीछे कौन रहा है जिसे आशाओं का केन्द्र बनाया जाय! केवल एक कर्ण ही रहा है, पर जब भीष्म चले गये, आचार्य कुछ न कर सके तो यह क्या कर सकेगा! यदि उसके पास अमोघ शक्ति बच रही होती, तब भी इतनी चिन्ता न होती। इधर हमारी यह दशा है, उधर पांडवों के भाग्यसूर्य का मध्याह्न है। एक अर्जुन ही प्रतिदिन हजारों सैनिकों का अन्त करके दम लेता है।

कल अश्वत्थामा सन्धि करने का उपदेश दे रहे थे, परन्तु इस समय सन्धि करना व्यर्थ है—विडम्बना है। जिसके लिए हजारों लाखों वीरों ने अपने जीवन न्योछावर कर दिये, उसका उचित स्थान उन्हीं के पास है। (आवेश से) युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव इन सब को भी वहीं भेज कर रहूँगा, सन्धि होगी तो वहीं होगी—उसकी शर्तें भी वहीं दादा, और आचार्य की सम्मति से तय होंगी। (सोचकर) पर पीछे रहा कौन

है जिसके भरोसे लड़ूं! (उत्तेजित होकर) है क्यों नहीं, कर्ण है, शल्य है, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा है। यद्यपि कर्ण के पास कुण्डल, कवच और शक्ति नहीं रही तो भी वह किसी बात में अर्जुन से कम नहीं है। उसका पराक्रम किसी से कम नहीं—तभी तो दादा और आचार्य उससे डाह करते थे। साथ ही, वह मेरा पूर्ण विश्वासपात्र है। दादा का अर्जुन से पौत्रस्नेह था, आचार्य का उससे शिष्यस्नेह था, पर कर्ण उसका जानी शत्रु है। इसलिए उसे मारने में कोई कसर न छोड़ेगा। (ऊँचे स्वर से) कोई है ? (द्वारपाल आता है।)

द्वारपाल—आज्ञा महाराज ?

दुर्योधन—अंगराज कर्ण को बुला लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा (जाता है)।

दुर्योधन—मेरा विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ रहा है कि जो कार्य दादा और आचार्य से नहीं हो सका उसका संपादन कर्ण अवश्य करेगा।

(कर्ण का प्रवेश)

कर्ण—(प्रणाम करके) महाराज, आधी रात के समय आपने स्मरण किया है—क्या कोई विशेष कारण है ?

दुर्योधन—सखे, आचार्य की मृत्यु से चित्त अशान्त हो रहा था, नींद नहीं आ रही थी, इसलिऐ तुम्हें कष्ट दिया कि दोनों मिल कर आगामी कार्यक्रम का ही निर्णय कर लें।

कर्ण—पांडवों के वध के सिवा और हमारा कार्य ही क्या है ?

दुर्योधन—कर्ण, अब मेरे अवलंब केवल तुम ही हो।

कर्ण—आपकी आज्ञाओं का पालन करना मेरे जीवन का मु
उद्देश्य रहा है।

दुर्योधन—यह तो मुझे पता है मित्र। तुम मेरे आंतरिक मित्र हो
जिस नौका के कर्णधार तुम दूसरों को बनाने रहे ह
के अब स्वयं बन कर उसे किनारे लगाइये।

कर्ण—महाराज की असीम कृपा है जो मुझे इस महान पद
योग्य समझते हैं। मैं आपके विश्वास का पात्र बनने
यत्न करूंगा। अब मुझे विदा होने की अनुज्ञा दीजि
इस सम्बन्ध में मुझे बहुत सा कार्य करना होगा।

दुर्योधन—तुम जा सकते हो। रात भर जागरण के कारण मु
भी तंद्रासी आ रही है। अब निश्चिन्त हो कर एक
आध घड़ी आराम करलूं। (कर्ण प्रणाम करके जाता है।

(पटाक्षेप)

युद्ध समझ में नहीं आता ! सेनापति कर्ण, तुम्हीं कोई उपाय बताओ।

कर्ण—महाराज, अर्जुन का मारना कठिन नहीं, यदि अर्जुन का सा सारथी मेरे पास भी हो। अर्जुन स्वयं इतना बली नहीं जितना कृष्ण के बल से बली है।

दुर्योधन—सेनापति, हमारे पक्ष में जो योद्धा बच रहे हैं, उन में से यदि कोई तुम्हारे सारथ्य के योग्य हो तो मैं उसे अभी तुम्हारे साथ किये देता हूँ।

कर्ण—महाराज, यदि शल्य मेरे सारथ्य का काम सँभालें तो मुझे कृष्ण की कोई चिन्ता न होगी।

दुर्योधन—इस का प्रबन्ध करना मुझ पर छोड़ो।

कर्ण—तो मुझे जाने की अनुज्ञा दीजिए, मैंने कल के लिए अभी बहुत तैयारी करनी है।

दुर्योधन—हाँ, जाइये।

(कर्ण जाता है। दुर्योधन द्वारपाल को शल्य को बुला लाने को भेजता है।)

दुर्योधन—(शकुनि से) मामा, शल्य कर्ण का सारथी बनना मानेगा कि नहीं ?

शकुनि—हम सब लोग इस समय कर्ण के अधीन हैं, इसलिए महाराज शल्य को सेनापति का वचन टालना न चाहिए।

(शल्य का प्रवेश)

शल्य—(प्रणाम कर) महाराज ने इस समय मुझे किस लिए स्मरण किया है ?

दुर्योधन—महाराज शल्य, प्रतिक्षण युद्ध की समस्या बहुत विकट

होती जा रही है। बचने का कोई उपाय नहीं सूझता। अब केवल एक ही उपाय रह गया है जिससे रक्षा की सम्भावना है और वह आप पर निर्भर है।

शल्य—वह क्या है कुरुराज ?

दुर्योधन—कल कर्ण का अर्जुन से भयङ्कर युद्ध होगा।

शल्य—होना ही चाहिये। कहां तक हम इस यन्त्रणा को सहन करते रहेंगे !

दुर्योधन—इस यन्त्रणा से मुक्ति का एक ही उपाय है। वह यह है कि जब कर्ण का युद्ध अर्जुन से हो तो आप उसके सारथी बनें।

शल्य—यह नहीं होगा। कर्ण किस बात में मुझसे श्रेष्ठ है कि मैं उसका रथ हाँकूं ?

दुर्योधन—महाराज, बुद्धिमान पुरुष सदा दूरदर्शिता से काम लेते हैं। इस समय हम सब एक ही नाव में हैं। यदि वह डूबेगी तो हम सब डूबेंगे। दूसरे, सारथी बनने में हर्ज क्या है ? क्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कम हैं जो उसके सारथी बने हैं। इसमें आपकी हेठी नहीं कर्ण की हेठी है, जो आपकी शरण चाहता है।

शल्य—(अपने आप) मैंने युधिष्ठिर जी से भी तो प्रण किया था कि जब कर्ण और अर्जुन का युद्ध होगा तो कर्ण का सारथी बन कर उसका बल कम करूंगा। वह भी तो पूरा करना होगा ! (स्पष्ट) महाराज, आपके कहने से मैं कर्ण का सारथी बनना इस शर्त पर स्वीकार करता हूँ कि रथ हांकते समय मैं कर्ण से जो कुछ भी कहूँ उसे वह सुनना पड़ेगा।

दुर्योधन—यह शर्त मैं कर्ण की ओर से स्वीकार करता हूँ।

शल्य—तो मैं भी आपकी आज्ञा स्वीकार करता हूँ। अब मुझे विदा दीजिए।

दुर्योधन—हाँ, आप जा सकते हैं। तो बात पक्की हुई न?

शल्य—क्षत्रियों के मुख से निकली बात सदा पक्की ही होती है।

(जाता है।)

दुर्योधन—यह चिन्ता भी मिटी। शल्य का कर्ण से मिलना सोने पर सोहागा हो जायगा। इन दोनों की सम्मिलित शक्ति अर्जुन और कृष्ण की शक्ति से किसी तरह कम न होगी। फिर कृष्ण निरा सारथी ही है, उसने शस्त्र न उठाने का प्रण किया हुआ है और शल्य समय पर युद्ध भी कर सकता है। शल्य और कर्ण एक से एक मिल कर ग्यारह हैं और अर्जुन एक का एक। अब हमारी विजय निश्चित है।

(दासी का आश्रय लिये गांधारी का प्रवेश।)

गांधारी—बिलकुल अनिश्चित है दुर्योधन, बल्कि आकाशकुसुम की तरह असम्भव है!

दुर्योधन—आप कैसे आईं माता? राजमाता युद्धभूमि में?

गांधारी—बेटा, एक बार फिर देखने आई हूँ कि माता के स्नेह, आज्ञा और अनुनय-विनय में कुछ भी असर रह गया है कि नहीं। दुर्योधन, मातृस्नेह के सामने कठोर से कठोर हृदय भी पिघल जाते हैं, मातृ-आज्ञा के आगे वीरातिवीरों की भी गरदनें झुक जाती हैं और मातृविनय की बाढ़ में [illegible]

मातृशक्तियों की परीक्षा के लिए मैं फिर आई हूँ !

दुर्योधन—आपका ध्येय क्या है ? कहिये माता, मेरे पास अधिक समय नहीं है।

गांधारी—बेटा, मेरे सौ पुत्रों में से लगभग नब्बे पुत्रों को रण-चण्डी को तृप्त करने के लिये तूने अग्निकुण्ड में स्वाहा कर दिया है, पर चंडी अभी तक तृप्त नहीं हुई, उसने अब तक तुम्हें विजय का वरदान नहीं दिया। अब तो उस कठोरहृदया की पूजा छोड़ो, रणचंडी की जगह कमलवासिनी लक्ष्मी की पूजा करो।

दुर्योधन—तो आप मुझे युद्ध बन्द करने को कहने आई हैं ? यह न होगा माता। इसके सिवा दुर्योधन आप की सब आज्ञायें मानने को प्रस्तुत है।

गांधारी—बेटा, सौ बालकों की जननी हो कर भी मैं अपुत्रा हो जाऊँगी और उधर कुन्ती के तीनों के तीनों पुत्र जीवित रहेंगे। क्या तुम्हें यह सह्य है ? अब तो कहना मानो पुत्र, मुझे राज्य नहीं चाहिये, ऐश्वर्य नहीं चाहिए, सुखभोग नहीं चाहिए—चाहिये केवल तुम लोगों के—दो चार बचे हुए हृदय के टुकड़ों के मुख देखना।

दुर्योधन—माता, मैंने इस बात पर कई बार विचार किया है और इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि इस समय युद्ध बन्द करना भीरुता होगी। युद्ध का परिणाम मैं जानता हूँ। मूर्ख नहीं, सब कुछ जानता हूँ। समस्या इस समय यह है कि सामने उत्तुङ्गशिखर पर्वत है और पीछे पाताल-स्पर्शिनी खाड़ी है। न आगे जा सकता हूँ और न

पीछे! मेरे कहने पर दादा, आचार्य और असंख्य वीरों ने हँसते हँसते अपनी जानों को रणचंडी के यज्ञ में बलिदान कर दिया है। इसी रण के कारण हज़ारों घरों के दीपक बुझ गये हैं, हज़ारों वंश निर्मूल हो गये हैं। अब मेरा स्थान यहां नहीं है— उन्हीं वीरात्माओं के पास है। यदि इस समय मैं युद्ध बन्द कर देता हूँ तो स्वर्ग से वीरों की आत्मायें और संसार में तड़पते हुए पितृविहीन पुत्रों और पतिविहीन विधवाओं के आर्तनाद मेरे जीवन को सदा के लिए कष्टमय बना देंगे। वे लोग मुझे धिक्कारेंगे और कहेंगे—नराधम, कायर, दुर्योधन अपने सुख और ऐश्वर्य की लालसा से हमें धधकते अग्निकुण्ड में झोंक कर खुद गुलछर्रे उड़ा रहा है। क्या आप अपने वीर पुत्र पर होती हुई धिक्कारों की इस बौछार को सह सकोगी? क्या आप यह चाहती हो कि आप का स्तनन्धय आत्मज कुरुवंश को कलंकित करने का कारण बने? माता, माता—बताओ, बताओ कि वीर क्षत्रियाणी, वीरजाया, वीर स्त्री होकर आप का भी कोई कर्तव्य है कि नहीं?

गांधारी—(दुर्योधन के सिर पर हाथ रख कर) शान्त बेटा, शान्त! मैं सब कुछ जानती हूँ—क्षत्रियधर्म भी जानती हूँ। पर क्या करूं! पुत्रस्नेह ने मन की सब भावनाओं को दबा रक्खा है। मैं आंखों की अन्धी तो हूँ ही, पुत्रस्नेह ने मेरी आन्तरिक [illegible]

भीम—(अपने तीर से दुःशासन के तीर को मध्य में ही काट कर) तुम्हारा यह तीर यहां तक पहुँचने ही न पायेगा। अब मेरी गदा के प्रहार को सहन कर। (गदा को ज़ोर से दुःशासन के सिर पर प्रहार करता है। दुःशासन प्रहार से मूर्छित हो कर गिर पड़ता है।)

भीम—(उछल कर उसकी ओर जाता हुआ) इस समय सब को सुना कर मैं कहता हूँ कि मैं अभी इस पापी का अन्त करूंगा। किसी की भुजा में शक्ति हो तो इसे बचा ले। सिंह की दाड़ों में आये हुए हरिण की तरह इस दुःशासन को जो छुड़ाने का यत्न करेगा, इस से पहले वही यमलोक को जायेगा। (कूद कर उस की छाती पर चढ़ जाता है। कटार उसकी छाती पर रखकर) अरे नराधम, जिस समय मेरे मुख पर प्रण का ताला लगा था, उस समय 'बैल, बैल' कह कर मुझे चिढ़ाता था। उन शब्दों को कहने वाली इस जिह्वा को अभी खींच देता हूँ। जिन हाथों से तू ने द्रौपदी के पवित्र केश खींचे थे, उन्हें अभी तोड़ देता हूँ। (तलवार से उसके दोनों हाथ काट देता है।)

दुःशासन—भीम, इतना कष्ट देकर वध करने से क्या लाभ ! एक दम ही मेरा अंत क्यों नहीं कर देता ?

भीम—दुःशासन, शारीरिक कष्ट हृदय के कष्ट से बहुत कम दुःखदायी होता है। तुम लोगों के वाग्बाणों से छिद-छिद कर हमारे हृदय छलनी हो चुके हैं। क्या वह कम कष्ट है जिसे हम वर्षों से भोग रहे हैं ! विपत्ति के समय कोई सहायक नहीं होता। जिन के कन्धों पर चढ़ कर तुम हम

लोगों का अपमान करते रहे वे ही तुम्हारे महाराज दुर्योधन और सेनापति कर्ण अब कहां हैं ?

(उस के हृदय में कटार घुसेड़ता है। दुःशासन के हृदय से ज़ोर से रुधिर निकलता है।)

भीम—(रक्त को पीता हुआ) माता के दूध में, द्राक्षासव में, अमृत में भी ऐसा स्वाद नहीं जैसा दुःशासन के रक्त में मुझे मिल रहा है। मेरी दो प्रतिज्ञाओं में से एक तो दुःशासन के रक्त से पूरी होगई है, दूसरी अब दुर्योधन की जांघ तोड़ कर पूरी होगी। (कुछ सोच कर) मेरी प्रतिज्ञा तो पूरी हो चुकी, पर द्रौपदी को अभी शेष है। उसे भी इस दुष्ट का चुल्लूभर रक्त अपने बालों को सींच कर वेणी बांधने को चाहिये। (चुल्लू में दुःशासन का लोहू भर कर ले जाता है।)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(स्थान—*कर्ण का महल, कर्ण रण के लिए तैयार हो रहा है, शरीर पर कवच पहनता हुआ ऊपर नीचे जा आ रहा है।*

कर्ण—(अपने आप) बस इसी दिन—आज के ही दिन निर्णय हो जायगा। मैं निर्णय करके ही छोड़ूंगा कि भारत में बलवानों में उत्तम मैं हूँ या अर्जुन। हम दोनों में से भूमंडल पर एक ही के लिए स्थान है—एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। अर्जुन की विजय हो या मेरी—इसकी कोई चिन्ता नहीं। पर अर्जुन से एक बार लोहे के चने चबवाऊँगा। उसे पता लगेगा कि किसी

से पाला पड़ा था। जिस समय मेरे दोर्दण्ड के बल से छूटे हुए तीर उसकी छाती में धँसेंगे तो उसे छठी का दूध याद आ जायेगा। क्या हुआ यदि उसके सहायक कृष्ण हैं, शल्य भी किसी बात में किसी से कम नहीं। पर गुरु परशुराम जी ने तो कहा था कि विजय अर्जुन......। (आवेश में) हो, अर्जुन की ही हो, मैं विजय नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल अपने यश की ध्वजा को ऊँचा फहराना। चाहता हूँ आने वाली सन्तानों के मुख से कहलवाना कि सूतपुत्र होकर भी कर्ण ने पाँडुवंश-शिरोमणि सव्यसाची से लोहा लिया था। आज मेरे मन की अभिलाषा.........

(सहसा पद्मावती का प्रवेश)

पद्मावती—कैसी अभिलाषा प्राणेश्वर ?

कर्ण—वही अभिलाषा—वही अभिलाषा प्रिये, जो वर्षों से मेरे मन में अपूर्ण ही पड़ी रही है और जो इस समय लम्बी और कठिन तपस्या के बाद पूर्ण होने वाली है।

पद्मावती—किसी और प्रदेश का राज्य मिल गया है क्या ?

कर्ण—त्रिलोकी-राज्य भी उसके सामने तुच्छ है।

पद्मावती—ऐसी कौनसी वस्तु है नाथ ?

कर्ण—अपने पराक्रम को दिखाने का अवसर। वर्षों से साधना कर रहा था कि किसी तरह अर्जुन से साम्मुख्य हो। आज वह सफलता मिलने को है।

पद्मावती—अर्जुन से साम्मुख्य ! जिसके दृष्टिपात से ही वीरों के हृदय थर्रा जाते हैं, उस अर्जुन का साम्मुख्य ! जिसके गांडीव के टंकार से योद्धाओं के हाथों से अस्त्र गिर जाते हैं, उस अर्जुन का साम्मुख्य ! जिसके देवदत्त के

नाद के आगे सिंहगर्जन भी तुच्छ है, उस अर्जुन का साम्मुख्य! जिसके रक्षक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उस अर्जुन का साम्मुख्य! क्या कह रहे हो प्राणधन! आपका यह वचन सुनते ही मेरी होश ठिकाने नहीं रही!

कर्ण—कर्ण की सहधर्मिणी होकर तुम्हारे मुख से ऐसे वचन! जिस प्रकार कर्ण वीरता में अपने आपको लाखों में एक मानता है, उसी तरह उसकी अर्धाङ्गिनी को भी वीर नारी-कुल में अनुपम होना चाहिए।

पद्मावती—पर अर्जुन से युद्ध करना शेर के मुँह में हाथ डालना है।

कर्ण—कर्ण का वह हाथ है जिस में शेर के मुख की दंष्ट्रा तोड़ने की क्षमता है।

पद्मावती—अपने प्राणेश के बल पर मुझे गर्व है, पर क्या अर्जुन से लोहा लेने के बिना काम न चलेगा?

कर्ण—उससे एक न एक दिन लोहा लेना ही पड़ेगा। तो फिर क्यों न शीघ्र ही लिया जाय। जब तक अर्जुन और कर्ण दोनों जीवित हैं तब तक युद्ध की समाप्ति न होगी।

पद्मावती—मैं अबला क्या जानूं इन बातों को प्राणधन?

कर्ण—तुम अबला नहीं हो। तुम में बलिष्ठ पिता का रक्त है, तुम बलिष्ठ पति की स्त्री हो, तुम बलिष्ठ पुत्रों की जननी हो—तुम अबला नहीं हो सकतीं। अबला कहाने वाली नारियों ने संसार में वे काम किये हैं जिन्हें बलिष्ठ से बलिष्ठ मनुष्य सम्पादन करने का साहस ही नहीं कर सकते।

स्त्रियों की सहनशीलता जगत्प्रसिद्ध है, तुम्हारे लिये भी उसके प्रदर्शन का समय आ गया है प्रिये! मन छोटा न करो। तुम कर्ण-पत्नी हो।

पद्मावती—प्राणाधार, आप के वचनों से मेरे हृदय में वीररस का सागर ठाठें मारने लगा है। जी चाहता है कि आपके शरीर का कंचुक बन कर अपना जीवन सफल बनाऊँ।

(जाकर एक पुष्पमाला लाती है और कर्ण के कंठ में पहनाती है।)

इष्टदेव, जो मन पहले अनिष्ट शङ्का से विक्षुब्ध हो रहा था वही आपके गले में यह माला पहना कर आपको रणभूमि के लिए विदा करने को उत्सुक हो रहा है।

कर्ण—अब तुम कर्णजाया हो। प्रिये, शायद यह हमारी अन्तिम भेंट हो!

पद्मावती—मेरे वीर स्वामी, शरीर का सम्बन्ध चाहे टूट जाय, पर हमारी आत्माओं के सम्बन्ध को कोई शक्ति नहीं तोड़ सकती। नाथ, मुझे आपकी वीर मृत्यु और वीर विजय दोनों पर गर्व होगा। आप ने ही तो कहा था कि मैं वीरपुत्री, वीरजाया और वीरप्रसू हूँ।

कर्ण—ईश्वर, मुझे शक्ति प्रदान करें कि मैं तुम्हारे इन उच्चविचारों के अनुरूप बन सकूं।

(पद्मावती की ओर देखता देखता चला जाता है।)

पद्मावती—चले गये, शायद सदा के लिये चले गये। जिस अर्जुन के सामने भीष्म, द्रोण, आदि न टिक सके उस के सामने……। यह मैं क्या सोच रही हूँ! उनके विषय

में अनिष्ट भावना ! नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। एक अर्जुन तो क्या हज़ार अर्जुन भी मेरे वीर स्वामी का मुकाबला नहीं कर सकते। पर अर्जुन के सहायक............(सोच कर) होने दो, एक क्या सौ कृष्णों को भी उसे सहायता क्यों न मिले, किंतु मेरे स्वामी की तुलना—शूरता में, दानिता में, धीरता में कोई नहीं कर सकता।

ईश्वर मेरा सौभाग्य अटल............

(एक भिक्षुक का प्रवेश)

भिक्षुक—नहीं रह सकता।

पद्मावती—भिक्षुक, तूने क्या कह डाला—मेरे धैर्य के बांध को तोड़ दिया है। (अपने आप) इस भिक्षुक का वचन कहीं अदृष्टोक्ति न हो।

भिक्षुक—कर्ण के द्वार पर आकर मैं भूखा नहीं रह सकता।

(पद्मावती बहुत सा भोजन लाकर भिक्षुक को देती है।)

पद्मावती—भिक्षुक, मेरे पति की दीर्घायु के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहना।

(भिक्षुक जाता है।)

गाना

अबलों के रखवारे हो।

करुणानिधान जगदीश विभो, अबलों के रखवारे हो।

नैया है मंझधार परी, अब दिसे न पारावार,

ले पतवार दया-करुणा की उसे लगा दो पार

लाज के तुम्हीं रखवारे हो ।
भक्तों के………………।

ध्रुव की टेर सुनी सुरमेश्वर, किया न तनिक विचार
धाय उठे, वर-आसन देकर किया अनुपम प्यार,
हृदय-मन्दिर के उजियारे हो ।
भक्तों के………………

अतिद्वेषी हिरणाक्ष लगा जब करने सुत संहार,
भक्तवत्सल हरि तुमने ही किया भक्त-उद्धार
दुख भय भी हरनेहारे हो ।
भक्तों के………………।

(गाती गाती जाती है ।)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—संग्रामभूमि, कर्ण का रथ आता है । उसमें कर्ण और उसका सारथी शल्य बैठे हैं ।)

कर्ण—सारथी, रथ को यहीं खड़ा करो । जिस समय अर्जुन अपने शिविर से निकलेगा तो यहीं रोक कर उससे युद्ध करूंगा ।

शल्य—कर्ण, अर्जुन से युद्ध करने का साहस न करो । मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारा अन्त निकट है । आज तक कभी शृगाल ने भी सिंह का वध किया है ?

कर्ण—शल्य, मालूम होता है तुम शत्रु से मिले हुए हो, नहीं तो

मुझे कर्तव्यभ्रष्ट करने के लिए ऐसे वचन न कहते ! मणियों के पारखी को ही मणि की परख होती है—मेरे बल का ज्ञान अर्जुन को है, तुम्हें नहीं।

शल्य—अर्जुन को आने दो राधेय। जिस समय अर्जुन के गाँडीव से छूटे हुए बाण तुम्हारे रक्त के पिपासु हो कर तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे और तुम्हें अपनी देह छिपाने को कोई स्थान न मिलेगा, उस समय तुम पछताओगे।

(रथ पर चढ़े हुए कृष्णसहित अर्जुन का आना)

लो तुम्हारा काल सामने ही आ रहा है।

कर्ण—अर्जुन को देख कर मेरा हृदय बाँसों उछलने लगा है। मुझे विजय-पराजय की कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता है केवल अर्जुन के साथ लोहा लेने की। (ज़ोर से) अर्जुन, मैं कभी का यहां खड़ा तुम्हारी बाट जोह रहा हूँ।

अर्जुन—सूतपुत्र, मैं भी तुम्हें कभी का खोज रहा हूँ।

(अपना रथ उसके पास लेजाता है)

शल्य—सहों में रहता हुआ गीदड़ अपने आपको तब तक सिंह समझता रहता है जब तक सिंह का सामना नहीं होता। नरशृगाल, तुम अर्जुन के गर्जन को सुनते ही दुम दबा कर भाग जाओगे।

अर्जुन—(ऊँचे स्वर से) अर्जुन के हाथ से कर्ण को बचानेवाला संसार में कोई नहीं। जिस पापी के पापभार से वसुधरा दबी पड़ी है, उस कर्ण को मार कर मैं उसका बोझ हलका करूंगा।

कर्ण—अर्जुन, यह शस्त्रों का युद्ध है, बातों का नहीं।

अर्जुन—अपने शस्त्र सम्भालो कर्ण। कह न कहना कि अर्जुन ने बिना सूचना दिये वार किया था। (बाण चलाता है। बाण अर्जुन के रथ को दूर हटा देता है।) (दोनों सिपाही के शस्त्र और महीपाल आदि सबके बाण कटते हैं।)

कर्ण—अर्जुन, तुम्हारे जिन अस्त्रों ने दादा और आचार्य जैसे महारथियों को भी परास्त किया था, वे ही आज कर्ण के आगे ऐसे निष्फल होंगे जैसे आँधी का वेग हिमालय के सामने।

अर्जुन—राधेय, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि अर्जुन का तूणीर अक्षय है।

कर्ण—तूणीर अक्षय होगा, पर अर्जुन तो अक्षय नहीं। (नागास्त्र चलाता है जिस से सर्वत्र नाग दिखाई देते हैं) मेरे नाग तुम्हें इसी क्षण मार देंगे।

अर्जुन—तुम्हारे नागों को मेरे गरुड़ चबा जायेंगे। (गरुड़ास्त्र छोड़ता है। गरुड़ उसी क्षण नागों को खा जाते हैं।)

कर्ण—यह अस्त्र निष्फल हुआ तो क्या, अब इससे न बचने पाओगे। (आग्नेयास्त्र चलाता है, जिस से चारों ओर आग ही आग दिखाई देती है।)

अर्जुन—मेरा यह अस्त्र इस अग्नि को ही नहीं बल्कि तेरे हृदय की अग्नि को भी अभी शान्त किये देता है। (वरुणास्त्र चलाता है जिस से वर्षारूप जल से सारी आग बुझ जाती है।)

शल्य—सारथीपुत्र, आज अदृष्ट तुम्हारे विपरीत है। अर्जुन के हाथ से आज तुम नहीं बच सकते।

कर्ण—शल्य, तुम्हारी बातों से मैं उत्साहहीन होने का नहीं। क्षत्रियधर्म निष्काम युद्ध है, जय-पराजय ईश्वराधीन है।

(लगातार इतने तीर छोड़ता है कि अर्जुन दिखाई नहीं देता)

कृष्ण—अर्जुन, कर्ण का बल बढ़ रहा है। इसे इसी समय मारने में कुशल है।

अर्जुन—यह बाण कभी निष्फल न होगा (बाण चलाता है जिससे कर्ण का मुकुट कट जाता है।)

शल्य—कर्ण महाराज, मुकुट का कटना महा अपशकुन है। तीर की नोक ज़रा और नीचे होती तो आप की गरदन अब तक साफ उड़ गई होती। खैर, अब नहीं तो फिर सही। अर्जुन की दृष्टि आप की गरदन पर पड़ गई है, अब इसकी कुशल नहीं।

कर्ण—शल्य, तुम्हारा काम घोड़ों की रास पकड़ना है, उसी कर्तव्य का पालन करो।

शल्य—मैंने तो आज रासें पकड़ी हैं, पर तुम्हारे पुरखा कब से इन्हें पकड़ते आये हैं।

(अर्जुन का एक और बाण कर्ण का कवच तोड़ देता है।)

अब बाण को हृदये में घुसने में कोई रुकावट नहीं रही। देखना यह है कि पहले सिर कटता है कि हृदय।

कर्ण—शल्य, मुझे पता न था कि तुम मेरे आस्तीन में सांप हो।

(अर्जुन का एक और बाण उसके रथ की ध्वजा को काट देता है। कर्ण शल्य को रथ घुमाने को कहता है पर रथ चल नहीं सकता)

शल्य—घोड़े इतना बल लगा रहे हैं, पर रथ घूमने नहीं पाता।

कर्ण—देखिये तो कारण क्या है ?

शल्य (देख कर) रथ का बायां चक्र भूमि में धँस गया है।

कर्ण—(व्याकुलता से देख कर) आह! ब्राह्मण का शाप! मालूम होता है मृत्यु का समय निकट आ गया है। (अर्जुन से) अर्जुन, दैवयोग से मेरे रथ का पहिया धरती में धँस गया है, ज़रा इसे निकाल लेने का अवसर मुझे दो। क्षत्रियधर्म यह है कि निहत्थे शत्रु पर शस्त्रप्रहार न करना चाहिए।

श्रीकृष्ण—राधेय, आज मुझे तुम्हारे मुख से 'धर्म' शब्द निकला सुन कर बड़ा विस्मय हुआ है। जिस धर्म पर चलाने के लिये तुम अर्जुन को कह रहे हो—वह तुम्हारा धर्म कहां था—जब सभा में द्रौपदी के साथ अत्याचार होते देख कर तुम हँस रहे थे? जिस समय द्यूत प्रपंच रचा कर शकुनि को महाराज युधिष्ठिर से द्यूत खेलने की अनुमति दी थी उस समय तुम्हारा धर्म कहां था? छल से पांडवों को लाक्षागृह में जलाने का षड्यन्त्र रचते समय तुम्हारा धर्म कहां था? जब अकेले कुमार अभिमन्यु का और महारथियों के साथ मिल कर वध किया था, उस समय धर्म कहां था? जब तब धर्म का विचार नहीं किया तो अब धर्म का पल्ला पकड़ कर विपत्ति के दल दल से क्यों निकलना चाहते हो? सारथीपुत्र, इस समय धर्म धर्म चिल्लाना तुम्हारी कायरता है, अपनी देह को बचाने का एकमात्र बहाना है।

(कर्ण लज्जा से सिर नीचे कर लेता है।)

कर्ण—कृष्ण, तुम अर्जुन के विचारशून्य पक्षपाती हो, इसलिये

भगवान परशुराम से दिये हुए इस अस्त्र से अर्जुन के साथ तुम्हारा भी वध करता हूँ।

(परशुराम का दिया अस्त्र निकालकर चलाना चाहता है, पर उसे चलाने की रीति को भूल जाता है।)

गुरुवर ने भी बड़े आड़े समय में साथ छोड़ा है! उनका शाप सत्य हो रहा है।

कृष्ण—अर्जुन, यही समय है कर्ण को मारने का।

अर्जुन—(एक अस्त्र निकाल कर) यदि मेरे किये तप का कुछ फल है, यदि मेरी गुरुभक्ति और वृद्धसेवा निष्काम रही हैं, यदि मैं योगिराज कृष्ण का अनन्यचित्त भक्त हूँ, तो मेरा यह बाण कर्ण का तन फोड़ कर पार हो जाये। (बाण छोड़ता है। बाण कर्ण के हृदय को चीर कर पार हो जाता है। कर्ण गिर पड़ता है। पांडवपक्ष में 'अर्जुन की जय', 'गांडीवधारी कुन्ती-पुत्र की जय' के नारे लगाते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ पांडव-शिविर की ओर और शल्य कर्ण का खाली रथ कौरवशिविर की ओर ले जाता है।)

शल्य—(रथ में जाता हुआ, अपने आप) कर्ण के वध का बहुत कुछ उत्तरदायित्व मुझ पर है। मैंने जो प्रण युधिष्ठिर जी से किया था उसका पालन मेरा कर्तव्य था। अब मैं प्रणमुक्त हूँ। संभव है युद्धसंचालन का भार अब मुझ पर ही आपड़े। और पीछे रहा ही कौन है! यदि कर्ण का पद मुझे सौंपा गया तो इस युद्धानल में अपनी देह की आहुति देकर स्वर्गस्थित कर्ण को तृप्त करूंगा, उसके वध करवाने के पाप का प्रायश्चित्त करूंगा। कर्ण वीर था, लाखों में एक

था। प्रतिकूल परिस्थितियों के रहते भी वह कभी हताश नहीं हुआ। अपने बाहुबल के गर्व पर भीम, अर्जुन-समान असंख्य वीर योद्धाओं से अकेला टक्कर लेने को उद्यत रहता था। भीष्म उसके विरुद्ध थे, आचार्य उस को सदा कोसते रहते थे, राजमन्त्री विदुर की उससे लागडाँट रहती थी, तो भी वह लक्षित मार्ग से कभी नहीं विचलित हुआ। उसका एक ही लक्ष्य, एक ही कामना, एक ही ध्येय था—अर्जुनवध। शारीरिक शक्तियों पर उस का पूर्ण अधिकार था पर जो दैवी शक्ति उसके विरुद्ध थी, उसपर आज तक किसने विजय पाई है जो वह विजय पाता! इसलिये उसे अपने ध्येय में सफलता न मिली। मैं तो समझता हूँ कि उसकी असफलता भी सफलता की पराकाष्ठा है। कर्ण मरा नहीं, जीवित है—संसार में सदा जीवित रहेगा। उसका जीवन वीरों का आदर्श होगा और उसका नाम वीरता के इतिहास में सदा सुवर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। (जाता है)

(रोती हुई राधा और अधिरथ का प्रवेश)

राधा—कहाँ है मेरा लाल ?

कर्ण—(मूर्छित अवस्था में) माता, मैं यहाँ पड़ा हूँ। (राधा भागती हुई उसके पास आती है। उसका सिर अपनी गोद में लेकर) बेटा, तुम्हारी यह दशा! रेशमी बिछौने पर सोने वाले महाराज कर्ण की यह दशा!! दिग्विजयी अंगराज की यह दशा!!!

कर्ण—माता, यह समय हर्ष का है, खेद का नहीं। वीर पुरुषों को यही शय्या शोभा देती है। मैं धन्य हूँ माता, कि मुझे अन्त

समय में भी तुम्हारे चरणरज को माथे पर चढ़ाने का सौभाग्य मिला है (उठने का यत्न करता है।)

राधा—(अत्यन्त स्नेह से विह्वल होकर) मेरे बेटा ! मेरे लाल !! (उसके गले से लिपट जाती है।)

(सहसा कुन्ती का प्रवेश)

कुन्ती—(रोती हुई) कर्ण ! बेटा कर्ण !! कहां हो ? मैं कुन्ती, तुम्हारी माता तुम्हें खोज रही हूँ।

कर्ण—(धीमे स्वर से) माता, मैं यहां हूँ।

(कुन्ती भागती आती है और कर्ण का सिर राधा की गोद से लेकर अपनी गोद में कर लेती है। कर्ण दोनों हाथों से उसे प्रणाम करता है और आँखें सदा के लिए बन्द कर लेता है। कुन्ती रोती है।)

राधा—तुम कौन हो बहन ?

कुन्ती—मैं तुम्हारी बहन हूँ। कर्ण की माता हूँ।

राधा—कर्ण की माता ! (दीर्घ श्वास लेकर) मुझे कर्ण की मृत्यु का इतना शोक न होता यदि मैं शेष आयु इस भाव को हृदय में लिये बिता सकती कि मैं ही उसकी माता हूँ। पर अब तो तुम ने कर्ण और मेरे मध्य में एक बड़ी दीवार खड़ी कर दी है।

कुन्ती—बिलकुल नहीं राधा, तुम ही कर्ण की माता हो। मैं उस की जननी थी, माता नहीं; तुम जननी नहीं, पर माता हो। तुम्हारा पद मुझ से कहीं ऊँचा है।

राधा—जो भारी बोझ तुम ने मेरे हृदय पर रक्खा था बहन, उसे तुमने स्वयं उठा लिया है। अब मैं कर्ण की स्निग्ध ... को हृदय में छिपाये शेष जीवन भी ...

मरूँगी। पर तुम्हारा नाम पूछना तो मैं भूल ही गई?

कुन्ती—नाम जानकर क्या करोगी?

(चला जाता है)

अनिरुद्ध— यह जीते भी पहेली था और मरते भी पहेली ही रहा। यह भी नहीं पता लगा कि वह स्त्री कौन थी। (राजा से) चलो, अब चलें।

राजा—चलने के सिवा और चारा ही क्या है।

(दोनों जाते हैं)

(कुन्ती फिर आती है)

कुन्ती—मन नहीं मानता, इसका संग छोड़ने को भी नहीं चाहता। (कर्ण का सिर गोद में लेकर) बेटा, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय—घोर अन्याय किया है। इसका मुझे अत्यन्त पश्चाताप हो रहा है। जी चाहता है—इसी सुन्दर मुख को गोद में लिए शेष आयु यहीं बिता दूँ। (कर्ण के मुख की ओर देख कर) कैसी सुन्दर मुसक्यान! मेरे लाल! मेरे वीर बेटा!! (रोती है।)

(एक ओर से कृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और सहदेव आते हैं और खड़े हो जाते हैं।)

युधिष्ठिर—नकुल को खोजते इतना समय हो गया है पर अब तक वह नहीं मिला। कहीं कोई......

श्रीकृष्ण—अनिष्ट की कोई शंका न करो युधिष्ठिर! वह अभी आता ही होगा।

सहदेव—मैंने सुना है कि वह अस्त्रों से सुसज्जित होकर शकुनि को खोज रहा था।

(सहसा नकुल का प्रवेश)

नकुल—(अपने आप) उस पापी को खोज कर आखिर मार ही डाला। सारे अनर्थ की जड़ वही था।

कृष्णा—(नकुल को देख कर) किसे खोज कर मार डाला नकुल ?

नकुल—(उन सब को देख कर और हाथ जोड़ कर) उसी पापी, अधर्मी शकुनि का अन्त कर आया हूँ।

युधिष्ठिर—शकुनि को मार आये ? शाबास बेटा। इस युद्धानल में पूर्ण आहुति तुम्हारे हाथ से पड़ी है।

भीम—अभी पूर्ण आहुति कहां ! पूर्ण आहुति तो मैं दुर्योधन की डालूंगा। जब तक वह जीवित है, युद्ध समाप्त नहीं हो सकता।

अर्जुन—मैंने सुना है कि वह द्वैपायन ह्रद में छिपा बैठा है।

श्रीकृष्ण—जब भीष्म, द्रोण और कर्ण से न रहे तो वह बेचारा कहां बचेगा ! फिर भीम का प्रण कहीं अपूर्ण रह सकता है !

युधिष्ठिर—द्रौपदी की अभिलाषा अक्षरशः पूरी हो रही है। कुरु-कुल-भवन के सारे स्तंभ एक एक कर गिर रहे हैं। तीन तो टूट ही गये हैं, केवल एक ही शेष रह गया है, वह भी अब गिरा तब गिरा।

अर्जुन—मुझे विजय की खुशी तो है ही, पर जितनी खुशी मुझे उस दुष्ट कर्ण...

कुन्ती—([illegible]) अर्जुन, कर्ण के विषय में ऐसे वचन न कहो।

([illegible])

युधिष्ठिर—(कुन्ती के पास जा कर, विस्मय से) माता, आप यहाँ? (कर्ण का सिर उसकी गोद में देख कर) आपकी गोद में कर्ण का सिर!

अर्जुन—पांडवकुल के घोर शत्रु का सिर पांडवों की माता की गोद में?

कुन्ती—तुम्हारी तरह कर्ण भी इस गोद का अधिकारी है।

युधिष्ठिर—इस का आशय?

कुन्ती—कर्ण मेरा बेटा था, तुम सब का अग्रज था।

अर्जुन—माता!......

कुन्ती—विस्मय की कोई बात नहीं बेटा, जो मैं कह रही हूँ बिल-कुल सत्य है।

युधिष्ठिर—माता, तुमने हम से बड़ा अन्याय किया है जो अब तक यह भेद छिपाये रखा है।

अर्जुन—यदि यह पता होता कि कर्ण हमारा अग्रज है, तो हम राजपाट को, जिस के लिए इतनी मार-काट हुई है—उसी के चरणों में अर्पण कर हम उस के सदा किंकर बन कर रहते।

युधिष्ठिर—क्या कर्ण को भी इसका पता था?

कुन्ती—पता हो गया था, पर बहुत देर के बाद, जब उसके लिए कौरवपक्ष छोड़ना असंभव हो गया था। बेटा, आंखों पर शत्रुभाव के कुत्सित आवरण होने के कारण तुमने वास्तविक

कर्ण को नहीं जाना। वह शूर था, उत्साही था, दानी था, और अपने प्रण का पक्का था। सारथी के घर पल कर—उसी का पुत्र कहला कर कौरवदल में महारथी का पद पाना उसी का काम था। जहां एक ओर तुम जैसे वीरों का उसे मुकाबला करना पड़ता था, दूसरी ओर उसे भाग्य के साथ भी लड़ना पड़ता था। पर आज तक भाग्य के सामने कौन टिक सका है जो वह टिकता!

युधिष्ठिर—इस विजय के कारण जो हर्ष और उल्लास हमें हो रहा था, वह एक दम लुप्त हो गया है।

अर्जुन—मेरी अन्तरात्मा मुझे अब ऐसे भाई की हत्या के लिए धिक्कारने लगी है। हमारी विजय भी पराजय है।

श्रीकृष्ण—धर्मराज, विषाद छोड़ो। जो होना था हुआ है। भवितव्यता प्रबल है—उस के आगे सब को झुकना पड़ता है।

युधिष्ठिर—सत्य है जनार्दन, भवितव्यता के आगे सब को झुकना पड़ता है। हम भी सब उसके आगे झुकते हैं।

(पटाक्षेप)
